(प्रकाशनाधिकार स्वरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला–६०

अध्यात्मरत्नत्रयी

परमपूज्यश्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित समयसार, प्रवचनसार व नियमसार
की गाथाओ का उन्हीं छन्दो मे

हिन्दी अनुवाद

रचयिता :—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सपादक :—
महावीरप्रसाद जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

प्रकाशक :—
खेमचन्द जैन सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उ० प्र०)

प्रथम सस्करण १५००] — गुरु पूर्णिमा — वीर निर्वाण सम्वत् २४८८ [न्यौछावर ७५ नये पैसे

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

की

प्रबंधकारिणी समिति के सदस्य

(१) श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन बैंकर्स, सदर मेरठ
संरक्षक, अध्यक्ष व प्रधान ट्रस्टी

(२) श्रीमती फूलमाला जी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद
जैन बैंकर्स, संरक्षिका

(३) श्री ला० खेमचंद जी जैन सर्राफ मेरठ, मंत्री

(४) श्री बा० आनन्दप्रकाश जी जैन वकील मेरठ, उपमंत्री

(५) श्री ला० शीतलप्रसाद जी दालमंडी सदर मेरठ, सदस्य

(६) श्री कृष्णचंद जी जैन रईस देहरादून, ट्रस्टी

(७) श्री ला० सुमतिप्रसाद जी जैन दालमंडी सदर मेरठ, ट्रस्टी

(८) श्री सेठ गैंदनलाल जी शाह सनावद, ट्रस्टी

(९) श्री राजभूषण जी वकील मुजफ्फरनगर, सदस्य

(१०) श्री गुलशनराय जी जैन नई मंडी मुजफ्फरनगर, सदस्य

(११) श्री मा० त्रिलोकचंद जी जैन सदर मेरठ, सदस्य

—:*:—

पुस्तकें मगाने का पता :—

सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उ० प्र०)

श्री सहजानद शास्त्रमाला के संरक्षक

(१) श्रीमान् लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(२) श्रीमती फूलमाला जी, धर्मपत्नी श्री लाला महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ ।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावो की नामावली :—

(१) श्री भवरीलाल जी जैन पाण्डया, झूमरीतिलैया
(२) ,, ला० कृष्णचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(३) ,, सेठ जगन्नाथजी जैन पाण्डया, झूमरीतिलैया
(४) ,, श्रीमती सोवती देवी जी जैन, गिरिडीह
(५) श्री ला० मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन, मुजफ्फरनगर
(६) ,, ला० प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी, मेरठ
(७) ,, ला० सलेखचन्द लालचन्द जी जैन, मुजफ्फरनगर
(८) ,, ला० दीपचन्द जी जैन रईस, देहरादून
(९) ,, ला० बारूमल प्रमचन्द जी जैन, मसूरी
(१०) ,, ला० बाबूराम मुरारीलाल जी जैन, ज्वालापुर
(११) ,, ला० केवलराम उग्रसैन जी जैन, जगाधरी
(१२) ,, सेठ गैंदामल दगड्डू शाह जी जैन, सनावद
(१३) ,, ला० मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मडी, मुजफ्फरनगर
(१४) ,, श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन, देहरादून
(१५) ,, श्रीमान् ला० जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर मेरठ
(१६) ,, मत्री जैन समाज, खण्डवा
(१७) ,, ला० बाबूराम अकलकप्रसाद जी जैन, तिस्सा
(१८) ,, बा० विशालचन्द जी जैन, आ० माज०, सहारनपुर
(१९) ,, बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर, इटावा
(२०) श्रीमती प्रेम देवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन सघी, जयपुर

(२१) श्रीमती धर्मपत्नी सेठ कन्हैयालाल जी जैन, जियागंज
(२२) ,, मन्त्राणी, जैन महिला समाज, गया
(२३) श्रीमान् सेठ सागरमल जी पाण्ड्या, गिरिडीह
(२४) ,, बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, गिरिडीह
(२५) ,, बा० राधेलाल कालूराम जी, गिरिडीह
(२६) ,, सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मन्डी, मुजफ्फरनगर
(२७) सेठ छदामीलाल जी जैन, फिरोजाबाद
(२८) ,, ला० सुखवीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ, बड़ौत
(२९) ,, सेठ गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, गया
(३०) ,, बा० जीतमल शान्तिकुमार जी छावड़ा, झूमरीतिलैया
* (३१) ,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन, सदर मेरठ
* (३२) ,, सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बड़जात्या, जयपुर
* (३३) ,, बा० दयाराम जी जैन R.S.D.O, सदर मेरठ
* (३४) ,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन, सदर मेरठ
* (३५) ,, ला० जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन, सहारनपुर
* (३६) ,, ला० नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस, रुड़की
× (३७) ,, ला० जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन, शिमला
× (३८) ,, ला० बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन, शिमला

नोट — जिन नामोंके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावो की स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं बाकी आने हैं तथा जिनके नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनके रुपये अभी नहीं आये, आने हैं। श्रीमती बल्लोबाई जी ध० प० सि० रतनचन्द जी जैन जबलपुरने संरक्षक सदस्यता स्वीकार की है।

आमुख

प्रिय पाठकवृन्द !

अध्यात्मदिवाकर, आचार्यप्रवर, भगवान् कुन्दकुन्दस्वामिप्रणीत समयसार, प्रवचनसार तथा नियमसार—ये तीनो ग्रन्थराज अध्यात्मतत्त्वनिरूपणपरक होने से ही समस्त दिगम्बर जैन समाजमे "अध्यात्मसारत्रयी" के सुनामसे सुप्रसिद्ध हैं।

उक्त तीनों ग्रन्थराजोकी मौलिक-भाषा प्राकृत है और छन्द अधिकतर 'आर्या' है।

भाषाकी दृष्टिसे इसके अध्ययन करने वाले तथा समझने वाले लोग प्रायः बहुत कम हैं। अतएव समाजमें अध्यात्मरसिकोका बहुभाग उक्त सारत्रयीकी भाषासे अपरचित होनेके कारण बहुधा वञ्चित ही रह जाता है।

समाजके ख्यातिप्राप्त, लब्धप्रतिष्ठ, परम अध्यात्मतत्त्ववेत्ता, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलाल जी वर्णी (सहजानन्दजी) महाराज सकल दिगम्बर-जैन समाजमें छोटे वर्णीजीके नामसे सुप्रसिद्ध हैं।

आप स्वर्गीय पूज्यश्री १०८ पूज्यपाद, प्रात स्मरणीय, गुरुवर्य्य, मुनि गणेशकीर्तिजी महाराज, प्रसिद्धपूर्व—पूज्य बड़े वर्णीजी, श्री गणेशप्रसादजी क्षुल्लक महाराजके अनन्यतम उपासक शिष्य हैं।

आपने उक्त कमीको पूर्ण करनेके हेतु उक्त "सारत्रयी" का हिन्दी-पद्यानुवाद उसी छन्दमे ही मूलानुसारी भावको परिपूर्णरूपसे व्यक्त करते हुए सुललित मधुरिम भाषामें थोड़े ही दिनोमे रच दिया है।

आपकी प्रस्तुत रचनाकी पदावलि सुश्राव्य एव मनोरम तो है ही, साथ ही सरस एव सरल भी है; जिससे तत्त्वजिज्ञासुवोको मूलकारके मनोगत अभिप्राय को हृदयङ्गम करनेमें कोई कठिनाई प्रतीत नही होगी।

ऐसी अर्थाभिव्यक्तिमें सक्षम, सुन्दरतम, पदविन्यास समन्वित रचनाको पढकर ऐसा कौन तत्त्वबुभुत्सु विद्वान् होगा, जो हर्षोल्लास-निमग्न नहीं होगा।

वर्तमान त्यागीवर्गमें विद्वत्ता और ग्रन्थरचनात्मक कृतितामें ही नहीं, प्रत्युत सुबोध और सरल वक्तृतामें भी आपका स्थान सर्वोपरि है। आप निरीहवृत्ति, आत्मतत्त्वान्वेषी, परमशान्तिप्रिय, साधुप्रकृति, परहितनिरत, व्रती पुरुष हैं।

आपसे समाजको आध्यात्मिक, बौद्धिक और चारित्रिक समुन्नतिप्रदायक लोकोत्तर सुरचनाए प्राप्त होने की आशा ही नहीं, प्रत्युत परिपूर्ण विश्वास है।

प्रस्तुत अभूतपूर्व रचनाके हेतु समस्त समाज आपका चिर-ऋणी रहेगा।

श्रद्धावनतमस्तक—
कमलकुमार जैन शास्त्री, गोइल्ल
न्याय व्याकरण काव्यतीर्थ, साहित्य धर्मशास्त्री
श्रीसाहूजैननिलय, न० ६, अलीपुर पार्कप्लेस,
कलकत्ता—२७

आत्मकीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

(१)

मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ वह है भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान ॥

(२)

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुखज्ञाननिधान ।
किन्तु आशावश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥

(३)

सुख-दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुखकी खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ॥

(४)

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूँ निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥

(५)

होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ॥

(अहिंसा धर्म की जय)

जो हि सुएणहि गच्छइ अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं ।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा ॥९॥
जो सुयणाणं सव्वं जाणइ सुयकेवलिं तमाहु जिणा ।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुयकेवली तम्हा ॥१०॥
ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ॥११॥
सुद्धो सुद्धादेसो णायव्वो परमभावदरिसीहिं ।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे ॥१२।
भूयत्थेणाभिगया जीवाजीवा य पुण्णपावं च ।
आसव संवरणिज्जरवंधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥१३।
जो पस्सदि अप्पाणं अवद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं ।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि ॥१४।
जो पस्सदि अप्पाणं अवद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं ।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं ॥१५।
दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं ।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्चयदो ॥१६।
जह णाम कोवि पुरिसो रायाणं जाणिऊण सद्दहदि ।
तो तं अणुचरदि पुणो अत्थत्थीओ पयत्तेण ॥१७।
एवं हि जीवराया णायव्वो तह य सद्दहेदव्वो ।
अणुचरदिव्वो य पुणो सो चेव दु मोक्खकामेण ॥१८।

जो श्रुत वेदित केवल, शुद्ध निजात्मा हि जानता होवे ।
ज्ञानी ऋषिवर उसको, निश्चय श्रुतकेवली कहते ॥९॥
जो सब श्रुतको जाने, उसको श्रुतकेवली प्रकट कहते ।
क्योंकि सकल श्रुतका जो, ज्ञान है सो आत्मा ही है ॥१०॥
व्यवहार अभूतार्थ रु, भूतार्थ शुद्धनय कहा गया है ।
भूतार्थ आश्रयी ही, सम्यग्दृष्टि पुरुष होता ॥११॥
शुद्ध शुद्धदेशक नय, को जानो परमभावदर्शीगण ।
जो अपरमभावस्थित, उनको व्यवहार देशन है ॥१२॥
भूतार्थतया सुविदित, जीव अजीव अरु पुण्यपापास्रव ।
संवर निर्जर बन्धन, मोक्ष हि सम्यक्त्वके साधक ॥१३॥
जो लखता अपनेको अबद्ध अस्पृष्ट अनन्य व नियमित ।
अविशेष असंयोगी, उसको ही शुद्धनय जानो ॥१४॥
जो लखता अपनेको, अबद्ध अस्पृष्ट अनन्य अविशेष ।
मध्यान्त आदि अपगत, वह लखता सर्व जिनशासन ॥१५॥
चारित्र ज्ञान दर्शन पालो धारो सदा हि साधुजनो ।
किन्तु तीनों ही समझो, निश्चयसे एक आत्मा ही ॥१६॥
ज्यों कोइ पुरुष धनका, इच्छुक नृपको सु जानकर माने ।
सेवा भी करे उसकी, उसके अनुकूल यत्नोंसे ॥१७॥
त्यों मोक्षरुचिक पुरुषो, शुद्धात्मा देवको सही जानो ।
मानो व भजो उसको, स्वभावसद्भावयत्नोंसे ॥१८॥

कम्मे णोकम्मह्मि य अहमिदि अहकं च कम्मणोकम्मं ।
जा एसा खलु बुद्धि अप्पडिबुद्धो हवदि ताव ॥१९॥
अहमेदं एदमहं अहमेदस्सेव होमि मम एदं ।
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा ॥२०॥
आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहंपि आसि पुव्वह्मि ।
होहिदि पुणोवि मज्झं एयस्स अहंपि होस्सामि ॥२१॥
एयत्तु असंभूदं आदवियप्पं करेदि संमूढो ।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि हु तं असंमूढो ॥२२॥
अण्णाणमोहिदमट्ठी मज्झमिणं भणदि पुग्गलं दव्वं ।
बद्धमबद्धं च तहा जीवो बहुभावसंजुत्तो ॥२३॥
सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं ।
किह सो पुग्गलदव्वीभूदो जं भणसि मज्झमिणं ॥२४॥
जदि सो पुग्गलदव्वीभूदो जीवत्तमागदं इदरं ।
तो सत्तो वत्तु जे मज्झमिणं पुग्गलं दव्वं ॥२५॥
जदि जीवो ण सरीरं तित्थयराइरियसंथुदी चेव ।
सव्वावि हवदि मिच्छा तेण हु आदा हवदि देहो ॥२६॥
ववहारणओ भासदि जीवो देहो य हवदि खलु इक्को ।
ण हु णिच्छयस्स जीवो देहो य कदावि एयट्ठो ॥२७॥
इणमण्णं जीवादो देहं पुग्गलमयं थुणित्तु मुणी ।
मण्णदि हु संथुदो वंदिदो मए केवली भयवं ॥२८॥

विधि विभाव देहों में, 'यह मैं मैं यह' की एकता जब तक।
मतिमें जिसके रहती, अज्ञानी जीव है तब तक ॥१६॥

जगमें जो कुछ दिखता, सजीव निर्जीव मिश्र वा वस्तू।
मैं यह यह मैं मैं हूं, इसका यह सब तथा मेरा ॥२०॥

यह पहिले मेरा था, इसका मैं था भि पूर्व समयोंमें।
मैं होऊंगा इसका, यह सब होगा तथा मेरा ॥२१॥

ऐसा असत्य अपना, करता मानन विकल्प यह मोही।
किन्तु नहिं भ्रान्ति करता भूतार्थात्मज्ञ निर्मोही ॥२२॥

अज्ञानमुग्धबुद्धी, जीव बना विविधभावसंयोगी।
इससे कहता तन सुत, नारी भवनादि मेरे हैं ॥२३॥

सर्वज्ञज्ञानमें यह झलका चित् नित्य ज्ञान दर्शनमय।
वह पुद्गल क्यों होगा, फिर क्यों कहता कि यह मेरा ॥२४॥

यदि जीव बने पुद्गल, पुद्गल बन जाय जीव जो कबहू।
तो कहना बन सकता, पुद्गल मेरा न पर ऐसा ॥२५॥

यदि जीव देह नहिं है, तो जो प्रभु आर्यकी स्तुतीकी है।
वह सर्व झूंठ होगा, इससे हि तन आत्मा जचता ॥२६॥

व्यवहारनय बताता, जीव तथा देह एक ही समझो।
निश्चयमें नहिं कबहू, जीव तथा देह इक वस्तू ॥२७॥

चित्से न्यारे भौतिक, तनकी स्तुति कर भले मुनी माने।
श्री भगवत्केवलिकी, मैंने श्रुति वंदना की है ॥२८॥

तं णिच्छये ण जुंजदि ण सरीरगुणा हु होंति केवलिणो ।
केवलिगुणे थुणदि जो सो तच्चं केवलिं थुणदि ॥२९॥
णयरम्मि वरिणदे जह णवि रण्णो वरणणा कदा होदि ।
देहगुणे थुव्वंते ण केवलिगुणा थुदा होंति ॥३०॥
जो इंदिये जिणित्ता णाणसहवाधियं मुणदि आदं ।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू ॥३१॥
जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं ।
तं जिदमोहं साहुं परमट्ठवियाणया विंति ॥३२॥
जिदमोहस्स हु जइया खीणो मोहो हवेज्ज साहुस्स ।
तइया दु खीणमोहो भरणदि सो णिच्छयविदूहिं ॥३३॥
सव्वे, भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं ।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमां मुणेयव्वं ॥३४॥
जह णाम कोवि पुरिसो परदव्वमिणंति जाणिहुं चयदि ।
तह सव्वे परभावे णाऊण विमुंचदे णाणी ॥३५॥
णत्थि मम कोवि मोहो वुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥३६॥
णत्थि मम धम्म आदी वुज्झदि उवओग एव अहमिक्को ।
तं धम्मणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति ॥३७॥
अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी ।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अरणं परमाणुमित्तं पि ॥३८॥

इति पूर्वरग सम्पूर्ण

वह न सही निश्चयसे, तनके गुण केवलीमें न होते ।
जो प्रभुके गुण कहता, वही प्रभुका स्तवन करता ॥२६॥
नगरीके वर्णनमें, ज्यों राजाकी न वर्णना होती ।
तन गुणके वर्णनमें, त्यों नहिं प्रभुकी स्तुती होती ॥३०॥
जो जीति इन्द्रियोंको, ज्ञानस्वभावी हि आपको माने ।
नियत जितेन्द्रिय उसको, परमकुशल साधुजन कहते ॥३१॥
जो जीति मोह सारे, ज्ञानस्वभावी हि आपको माने ।
जितमोह साधु उनको, परमार्थग साधुजन कहते ॥३२॥
मोहजयी साधूके, ज्योंहि सकल मोह क्षीण हो जाता ।
त्यों हि परमार्थज्ञायक, कहते हैं क्षीणमोह उन्हें ॥३३॥
चूंकि सकलभावोंको, पर हैं यह जानि त्यागना होता ।
इस कारण निश्चयसे, प्रत्याख्यान ज्ञानको जानों ॥३४॥
जैसे कोइ पुरुष पर, वस्तुको पर हि जानकर तजता ।
त्यों सब परभावोंको, पर हि जान विज्ञजन तजता ॥३५॥
मोह न मेरा कुछ है, मैं तो उपयोगमात्र एकाकी ।
यों जानें उसको मुनि, मोहनिर्ममत्व कहते हैं ॥३६॥
धर्मादि पर न मेरे, मैं तो उपयोगमात्र एकाकी ।
यों जानें उसको मुनि, धर्मनिर्ममत्व कहते हैं ॥३७॥
मैं एक शुद्ध चिन्मय, शुचि दर्शनज्ञानमय अरूपी हू ।
अन्य परमाणु तक भी, मेरा कुछ भी नहीं होता ॥३८॥

इति पूर्वरंग सम्पूर्ण

अथजीवाजीवाधिकारः

अप्पाणमयाणंता मूठा हु परप्पवादिणे केई ।
जीवं अज्झवसाणं कम्मं च तहा परुविंति ॥३६॥

अवो अज्झवसाणे-सु तिव्वमंदाणुभागगं जीवं ।
मण्णंति तहा अवरे णोकम्मं चावि जीवोत्ति ॥४०॥

कम्मस्सुदयं जीवं अवरे कम्माणुमायमिच्छंति ।
तिव्वत्तणमंदत्तणगुणेहिं जो सो हवदि जीवो ॥४१॥

जीवो कम्मं उहयं दोण्णिवि खलु केवि जीवमिच्छंति ।
अवरे संजोगेण हु कम्माणं जीवमिच्छंति ॥४२॥

एवंविहा वहुविहा परमप्पाणं वदंति दुम्मेहा ।
ते ण परमट्ठवाई णिच्छयवाईहिं णिद्दिट्ठा ॥४३॥

एए सव्वे भावा पुग्गलदव्वपरिणामणिप्पण्णा ।
केवलिजिणेहि भणिया कह ते जीवोत्ति वुच्चंति ॥४४॥

अट्ठविहं पि य कम्मं सव्वे पुग्गलमय जिणा विंति ।
जस्स फलं तं वुच्चइ दुक्खंति विपच्चमाणस्स ॥४५॥

ववहारस्स दरीसणमुवएसो वण्णिदो जिणवरेहिं ।
जीवा एदे सव्वे अज्झवसाणादओ भावा ॥४६॥

राया हु णिग्गदोत्तिय एसो वलसमुदस्स आदेसो ।
ववहारेण हु उच्चदि तत्थेको णिग्गदो राया ॥४७॥

जीवाजीव अधिकार

आत्मा न जानि मोही, बहुतेरे परको आत्मा कहते ।
अध्यवसान तथा विधि, को आतमरूपमें लखते ॥३९॥
कइ अध्यवसानोंमें, जीव कहें तीव्रमंदफलततिको ।
कोई आत्मा मानें, इन नानारूप देहोंको ॥४०॥
कोई कर्मोदयको, जीव कहें कर्मपाक सुख दुखको ।
तीव्रमंद अंशोंमें, जो नाना अनुभवा जाता ॥४१॥
जीवकर्म दोनोंको, मिला हुआ कोइ जीवको जानें ।
अष्टकर्मसंयोग हि, कितने ही जीवको मानें ॥४२॥
ऐसे नाना दुर्मति, परतत्त्वोंको हि आत्मा कहते ।
वे न परमार्थवादी, ऐसा तत्त्वज्ञ दर्शाते ॥४३॥
उन सब परभावोंको, पुद्गलद्रव्यपरिणामसे जाये ।
केवलि जिन दर्शाया, कैसे वे जीव हो सकते ॥४४॥
आठों ही कर्मोंको, पुद्गलमय ही जिनेन्द्र बतलाते ।
जिनके कि उदयका फल, सारा दुखरूप कहलाता ॥४५॥
वे अध्यवसानादिक, जीव कहे कहीं ग्रन्थमें वह सब ।
व्यवहारका हि दर्शन, जिनवर पूर्व वर्णित है ॥४६॥
बलसमुदयको 'राजा इतना विस्तृत चला हुआ' कहना ।
व्यवहारमात्रचर्चा, निश्चयसे एक नर नृप है ॥४७॥

एमेव य ववहारो अज्झवसाणादि अण्णभावाणं ।
जीवोत्ति कदो सुत्ते तत्थेको णिच्छिदो जीवो ॥४८॥

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥४९॥

जीवस्स णत्थि वण्णो णवि गंधो णवि रसो ण वि य फासो ।
णवि रूवं ण सरीरं णवि संठाणं ण संहणणं ॥५०॥

जीवस्स णत्थि रागो णवि दोसो णेव विज्जदे मोहो ।
णो पच्चया ण कम्मं णोकम्मं चावि से णत्थि ॥५१॥

जीवस्स णत्थि वग्गो ण वग्गणा णेव फड्डया केई ।
णो अज्झप्पट्ठाणा णेव य अणुभायठाणाणि ॥५२॥

जीवस्स णत्थि केई जोयट्ठाणाय बंधठाणा य ।
णेव य उदयट्ठाणा ण मग्गणट्ठाणया केई ॥५३॥

णो ठिदिबंधट्ठाणा जीवस्स ण संकिलेसठाणा वा ।
णेव विसोहिट्ठाणा णो संजमलद्धिठाणा वा ॥५४॥

णेव य जीवट्ठाणा ण गुणट्ठाणा य अत्थि जीवस्स ।
जेण दु एदे सव्वे पुग्गलदव्वस्स परिणामा ॥५५॥

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया ।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स ॥५६॥

एएहिं य संबंधो जहेव खीरोदयं मुणेयव्वो ।
ण य हुंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा ॥५७॥

त्यौं ही लहं जीव कहा, अध्यवसानादि अन्य भावों को ।
व्यवहारमात्र चर्चा, निश्चित वहं एक जीव एक हि है ॥४८॥

अरस अरूप अगंधी, अव्यक्त अशब्द चेतना गुणमय ।
चिह्नाग्रहण अरु स्वयं, अमंस्थान जीव को जानो ॥४९॥

नहिं वर्ण जीव के हैं, न गंध रस न न कोई सपरस हैं ।
रूप न देह न कोई, संस्थान न संहनन इसके ॥५०॥

नहिं राग जीव के हैं, न दोष नहिं मोह वर्तता इसमें ।
कर्म नहीं नहिं आस्रव, नहिं हैं नोकर्म भी इसके ॥५१॥

नहिं वर्ग जीवके हैं, न वर्गणा नांहि वर्गणा व्रज भी ।
अध्यात्म स्थान नहीं, अनुभाग स्थान भी नहिं है ॥५२॥

योगस्थान न कोई. वन्ध स्थान भी जीव के नहिं हैं ।
उदय स्थान नहीं हैं, न मार्गणा स्थान भी कोई ॥५३॥

स्थिति बन्ध स्थान नहीं, संक्ले शस्थान भी नहीं इसके ।
कोई विशुद्धि स्थान न, सयम लब्धि के स्थान नहीं ॥५४॥

जीव स्थान न कोई, गुणस्थान जीव के होते ।
क्योंकि भाव ये सारे हैं, हैं परिणाम पुद्गल के ॥५५॥

व्यवहार से ये भाव, वर्णादिक गुणस्थान तक सारे ।
बतलाये किन्तु निश्चिय, नमस्ते नहिं जीव के कोई ॥५६॥

क्षीर नीरवत् जानो, व्यवहृत सम्बन्ध बाह्य भावों से ।
किन्तु नहिं जीवके वे, यह सो उपयोगमय न्यारा ॥५७॥

पंथे मुस्संतं पस्सिदूण लोगा भणंति ववहारी ।
मुस्सदि एसो पंथो ण य पंथो मुस्सदे कोई ॥५८॥
तह जीवे कम्माणं णोकम्माणं च पस्सिदुं वण्णं ।
जीवस्स एस वण्णो जिणेहिं ववहारदो उत्तो ॥५६॥
गंधरसफासरूवा देहो संठाणमाइया जे य ।
सव्वे ववहारस्स य णिच्छयदण्हू ववदिसंति ॥६०॥
तत्थ भवे जीवाणं संसारत्थाण होंति वण्णादी ।
संसारपमुक्काणं णत्थि हु वण्णादओ केई ॥६१॥
जीवो चेव हि एदे सव्वे भावात्ति मण्ण से जदि हि ।
जीवस्सा जीवस्स य णत्थि विसेसो हु दे कोई ॥६२॥
जदि संसारत्थाणं जीवाणं तुज्झ होंति वण्णादी ।
तम्हा संसारत्था जीवा रूवित्तमावण्णा ॥६३॥
एवं पुग्गलदव्वं जीवो तहलक्खणेण मूढमही ।
णिव्वाणमुवगदो विं य जीवत्तं पुग्गलो पत्तो ॥६४॥
एक्कं च दोण्णि तिण्णि य चत्तारि य पंच इंदिया जीवा ।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स ॥६५॥
एदाहिं णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं ।
पयडीहिं पुग्गलमईहिं ताहिं कहं भण्णदे जीवो ॥६६॥
पज्जत्तापज्जता जे सुहुमा बादरा य जे चेव ।
देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता ॥६७॥

पथ में लुटते पथिकों को. देख कहें लोग लोकव्यवहारी ।
यह पथ लुटता निश्चय से, न कोइ मार्ग लुटता है ॥५८॥
कर्म नोकर्म वर्णों को, जीव क्षेत्रावगाह में लखकर ।
यह वर्ण जीव का है, ऐसा व्यवहार से हि कहा ॥५९॥
रूप रस गंध स्पर्श, शरीर संस्थान आदि इन सबको ।
निश्चय स्वरूपदर्शी, कहते व्यवहार चर्चा यह ॥६०॥
संसारी जीवोंके, भव में ही वर्ण आदि व्यवहृत हैं ।
संसार प्रमुक्तों के, नहिं वे वर्णादि होते हैं ॥६१॥
यदि ऐसा मानोगे, ये सब वर्णादि जीव होते हैं ।
तो फिर अन्तर न रहा, जीव अरु अजीव द्रव्यों में ॥६२॥
यदि भवस्थ जीवों के, होते वर्णादि भाव मानोगे ।
तो भवस्थ जीवों के, रूपपना प्राप्त होवेगा ॥६३॥
ऐसे इस लक्षण से, पुद्गल द्रव्य ही जीव हो जाता ।
मोक्ष पाकर भि पुद्गल, के जीवपना प्रसक्त हुआ ॥६४॥
एक दो तीन चौ पंचेन्द्रिय वादर वादर वसूक्ष्म प्रयाप्ति ।
अय अपर्याप्तादिक, हैं ये नाम कर्मकी प्रकृति ॥६५॥
इन पौद्गल मय प्रकृती, से जीवस्थान ये रचे गये होते ।
फिर इन पौद्गल भावों, को कैसे जीव कह सकते ॥६६॥
पर्याप्त अपर्याप्तक, सूक्ष्म तथा वादरादि जो भि कही ।
देह की जीव संज्ञा, वह सब व्यवहार से जानो ॥६७॥

मोहणकम्मस्सुदया हु वण्णिया जे इमे गुणट्ठाणा ।
ते कह हवंति जीवा जे णिच्चमचेदणा उत्ता ॥६८॥

इति जीवाजीवाधिकारः

—.० ❋ ०:—

अथ कर्तृकर्माधिकारः

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोण्हं पि ।
अण्णाणी तावदु सो कोधादिसु वट्टदे जीवो ॥६९॥
कोधादिसु वट्टंतस्स तस्स कम्मस्स संचओ होदि ।
जीवस्सेवं वंधो भणिदो खलु सव्वदरिसीहिं ॥७०॥
जइया इमेण जीवेण अप्पणो आसवाण य तहेव ।
णादं होदि विसेसंतरं तु तइया ण वंधो से ॥७१॥
णादूण आसवाणं असुचित्तं विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणंत्तिय तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥७२॥
अहमिक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो ।
तम्हि ठिओ तच्चित्तो सव्वे एए खयं णेमि ॥७३॥
जीवणिवद्धा एए अधुव अणिच्चा तहा असरणाय ।
दुक्खा दुक्खफलात्ति य णादूण णिवत्तये तेहिं ॥७४॥
कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेय परिणामं ।
ण करेइ एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥७५॥
णवि परिणमइ णगिण्हदि उप्पज्जइ ण परदव्वपज्जाये ।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥७६॥

जो भि गुणस्थान कहे, होते सब मोह कर्म के कारण ।
इन सब अचेतनों को, फिर कैसे जीव कह सकते ॥६८॥

इति जीवाजीवाधिकारः

—:० ❀ ०:—

कर्तृ कर्माधिकारः

जब तक न लखे अन्तर, आस्रव आत्मस्वरूप दोनोंमें ।
तब तक वह अज्ञानी, क्रोधादिक में लगा रहता ॥६९॥
क्रोधादिक में लगा जो, संचय उसके हि कर्म का होता ।
यो बंध जीव का हो, दर्शाया सर्वदर्शी ने ॥७०॥
जब इस आत्मा द्वारा, आस्रव आत्म-स्वरूपमें अन्तर ।
हो जाता ज्ञात तभी, से इसके बंध नहिं होता ॥७१॥
अशुचि विपरीत आस्रव, दुखके कारण है जानकर ज्ञानी ।
क्रोधादि आस्रवों से, स्वयं सहज पृथक् हो जाता ॥७२॥
मैं एक शुद्ध केवल, निर्ममत दर्शन ज्ञानसे पूरा ।
इस में लीन हुआ अब, अस्रव प्रक्षीण करता हूँ ॥७३॥
अध्रुव अनित्य अशरण, उपाधि भव ये विचित्र दुःखमई ।
दुःख फल जानि आस्रव; से अब विनिवृत होता हूं ॥७४॥
कर्म तथा नो-कर्मों, के परिणाम को जीव नहीं करता ।
यों सत्य मानता जो, वह सम्यक्दृष्टि ही ज्ञानी ॥७५॥
ज्ञानी सु जानता भी, नाना पुद्गल विकार कर्मोंको ।
नहिं परिण में न पावे, उपजे न परार्थ भावों में ॥७६॥

णवि परिणमइ ण गिण्हइ उप्पज्जइ ण परदव्वपज्जाये ।
णाणी जाणंतो वि हु सगपरिणामं अणेयविहं ॥७७॥
णवि परिणमइ ण गिण्हइ उप्पज्जइ ण परदव्वपज्जाये ।
णाणी जाणंतो वि हु पुग्गलकम्मफलमणंतं ॥७८॥
णवि परिणमइ ण गिण्हइ उप्पज्जइ ण परदव्वपज्जाये ।
पुग्गलदव्वं पि तहा परिणमइ सएहिं भावेहिं ॥७९॥
जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति ।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवोवि परिणमइ ॥८०॥
णवि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण हु परिणामं जाण दोण्हंपि ॥८१॥
एएण कारणेण दु कत्ता आदा सएण भावेण ।
पुग्गलकम्मकयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥८२॥
णिच्छयणयस्स एवं आदा अप्पाणमेव हि करेदि ।
वेदयदि पुणो तं चेव जाण अत्ता हु अत्ताणं ॥८३॥
ववहारस्स दु आदा पुग्गलकम्मं करेदि णेयविहं ।
तं चेव पुणो वेयइ पुग्गलकम्मं अणेयविहं ॥८४॥
जदि पुग्गलकम्ममिणं कुव्वदि तं चेव वेदयदि आदा ।
दोकिरियावादित्तं पसज्जए सो जिणावमदं ॥८५॥
जम्हा दु अत्तभावं पुग्गलभावं च दोवि कुव्वंति ।
तेण दु मिच्छादिट्ठी दोकिरियावादिणो हुंति ॥८६॥

ज्ञानी सुजानता भी, नाना अपने विभावों भावों को ।
नहिं परिणमे न पावे, उपजे न परार्थ भावों में ॥७७॥

ज्ञानी सुजानता भी, पुद्गल कर्मोंके फल अनंतों को ।
नहिं परिणमे न पावे, उपजे न परार्थ भावों में ॥७८॥

पुद्गल कर्म भी तथा, परिणमता है स्वकीय भावों में ।
नहिं परिणमे न पावे, उपजे न परार्थ भावों में ॥७९॥

जीव विभावनि कारण, पुद्गल कर्मत्व रूप परिणमते ।
पुद्गल विधि के कारण, तथा यहां जीव परिणमता ॥८०॥

जीव नहिं कर्मके गुण, करता नहिं जीव कर्मके गुणको ।
अन्योन्य निमित्तों से, उनके परिणाम होते हैं ॥८१॥

इस कारण से आत्मा, कर्त्ता होता स्वकीय भावों का ।
नहिं कर्त्ता वह पुद्गल, कर्म विहित सर्वभावों का ॥८२॥

निश्चयनय दर्शन में, आत्मा करता है आत्मा को ही ।
अपने को ही आत्मा, अनुभवता भव्य यो जानो ॥८३॥

व्यवहार के मतों में, कर्ता यह जीव विविध कर्मोंका ।
भोक्ता भी नाना विध, उन ही पौद्गलिक कर्मोंका ॥८४॥

यदि आत्मा करता है, अरु भोगता पौद्गलिक कर्मोंको ।
तो दोनों ही क्रियाओं से, तन्मयता प्रसक्त हुई ॥८५॥

चूंकि उक्त मतहट में, आत्माने स्वपर भाव कर डाला ।
सो दो किरियावादी, मिथ्यादृष्टी हि होते वे ॥८६॥

मिच्छत्तं पुण दुविहं जीवमजीवं तहेव अण्णाणं ।
अविरदि जोगो मोहो कोहादिया इमे भावा ॥८७॥
पुग्गलकम्मं मिच्छं जोगो अविरदि अणाणमज्जीवं ।
उवओगो अण्णाणं अविरइ मिच्छं च जीवो हु ॥८८॥
उवओगस्स अणाई परिणामा तिण्णि मोहजुत्तस्स ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरदिभावो य णादव्वो ॥८९॥
एऐसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो ।
जं सो करेदि भावं उवओगो तस्स सो कत्ता ॥९०॥
जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
कम्मत्तं परिणमदे तम्हि सयं पुग्गलं दव्वं ॥९१॥
परमप्पाणं कुव्वं अप्पाणं पि य परं करिंतो सो ।
अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगोहोदि ॥९२॥
परमप्पाणमकुव्वं अप्पाणं पि य परं अकुव्वंतो ।
सो णाणमओ जीवो कम्माणमकारओ होदि ॥९३॥
तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेइ कोहोहं ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होइ सो अत्तभावस्स ॥९४॥
तिविहो एसुवओगो अप्पवियप्पं करेइ धम्माई ।
कत्ता तस्सुवओगस्स होदि सो अत्तभावस्स ॥९५॥
एवं पराणि दव्वाणि अप्पयं कुणदि मंदबुद्धीओ ।
अप्पाणं अवि य परं करेइ अण्णाणभावेण ॥९६॥

मिथ्यात्व दो तरह का, जीव अरु अजीव रूप होता है।
दो-दो अविरत अज्ञान, मोह योग क्रोधादि भि है ॥८७॥
मिथ्यात्व अविरति अज्ञान, योग अजीव है पौद्गलिक कर्म।
मिथ्या अविरति अज्ञान, योग जीव है उपयोगमय ॥८८॥
उपयोग मोहयुत के, अनादि से तीन परिणमन वर्ते।
मिथ्या अज्ञान तथा, अविरति इन तीन को जानो ॥८९॥
शुद्ध निरंजन भी यह, उन तीनों के प्रयोग होने पर।
जिन भावों को करता, कर्त्ता उपयोग उनका है ॥९०॥
जीव जो भाव करता, होता उस भाव का यही कर्त्ता।
उसके होते पुद्गल, स्वयं कर्मरूप परिणमता ॥९१॥
पर को अपना करता, अपने को भि पररूप यह करता।
अज्ञानमयी आत्मा, सो कर्त्ता होय कर्मों का ॥९२॥
परको निज नहिं करता, अपने को न पर रूप करता यह।
संज्ञानमयी आत्मा, कर्त्ता होता न कर्मों का ॥९३॥
उपयोग त्रिविध यह ही, 'क्रोध हू' यों स्वविकल्प करता है।
सो उस आत्म भावमय, होता उपयोग का कर्त्ता ॥९४॥
त्रिविध उपयोग करता, यों आत्म विकल्प 'धर्मादि मैं हू'।
सो उस आत्म भावमय, होता उपयोग का कर्ता ॥९५॥
यो मूढ़बुद्धि करता, परद्रव्यों को हि आत्मा अपना।
अपने को भी परमय, करता अज्ञान भावों से ॥९६॥

एदेण हु सो कत्ता आदा णिच्छयविदूहि परिकहिदो ।
एवं खलु जो जाणदि सो मुंचदि सव्वकत्तित्तं ॥९७॥

ववहारेण हु आदा करेदि घडपडरथाणि दव्वाणि ।
करणाणि य कम्माणि य णोकम्माणीह विविहाणि ॥९८॥

जदि सो परदव्वाणि य करिज्ज णियमेण तम्मओ होज्ज ।
तम्हा ण तम्मओ तेण सोण तेसिं हवदि कत्त ॥९९॥

जीवो ण करेदि घड णेव पडं णेव सेसगे दव्वे ।
जोगुवओगा ऊप्पादगा य तेसिं हवदि कत्ता ॥१००॥

जे पुग्गलदव्वाणं परिणामा होंति णाण आवरणा ।
ण करेदि ताणि आदा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥१०१॥

जं भावं सुहमसुह करेदि आदा स तस्स खलु कत्ता ।
तं तस्स होदि कम्मं सो तस्स हु वेदगो अप्पा ॥१०२॥

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि हु ण संकमदि दव्वे ।
सो अण्णमसंकंतो कह तं परिणामए दव्वं ॥१०३॥

दव्वगुणस्स य आदा ण कुणदि पुग्गलमयम्हि कम्मम्हि ।
तं उभयमकुव्वंतो तम्हि कहं तस्स सो कत्ता ॥१०४॥

जीवम्हि हेदुभूदे वंधस्स दुपस्सिदूण परिणामं ।
जीवेण कदं कम्मं भण्णदि उवयारमेत्तेण ॥१०५॥

जोधेहिं कदे जुद्धे रायेण कदति जंपए लोगो ।
तह ववहारेण कदं णाणावरणादिभावेहिं ॥१०६॥

इस आत्मा को कर्ता, होना अज्ञानमें बताया है।
ऐसा हि जानता जो, वह सब कर्तृत्व को तजता ॥९७॥
व्यवहार मात्रसे यह, आत्मा करता घटादि द्रव्योंको।
करणों को, कर्मों को, नो कर्मों को बताया है ॥९८॥
यदि वह परद्रव्योंको, करता तो तन्मयी हि हो जाता।
चूंकि नहीं तन्मय वह, इससे परका नहीं कर्त्ता ॥९९॥
न निमित रूपमें भी, आत्मा कर्ता घटादि द्रव्योंका।
योगोपयोग कारण, उनका ही जीव कर्ता है ॥१००॥
जो पुद्गल द्रव्योंके, ज्ञानावरणादि कर्म बनते हैं।
उनको न जीव करता, यो जो जाने वही ज्ञानी ॥१०१॥
जिस भाव शुभाशुभ को, करता आत्मा उसका वह कर्ता।
उसका कर्म वही है, वह आत्मा भोगता उसको ॥१०२॥
जो जिस द्रव्य व गुणमें, वह नहिं पर द्रव्यमें पलट सकता।
परमें मिलता न हुआ, कैसे परपरिणमा सकता ॥१०३॥
पुद्गलमय कर्मोंमें, आत्मा नहिं द्रव्य गुण कभी करता।
उनको करता न हुआ, कर्त्ता हो कर्म का कैसा ॥१०४॥
जीव हेतु होनेपर, विधि के बंध परिणामको, लखकर।
जीव कर्म करता है, ऐसा उपचार मात्र कहा ॥१०५॥
योद्धादि युद्ध करते, करता नृप युद्ध यह कहे जनता।
ज्ञानावरणादि किये, जानो व्यवहार से ऐसा ॥१०६॥

उप्पादेदि करेदि य बंधादि परिणामएदि गिण्हदि य।
आदा पुग्गलदव्वं ववहारणयस्स वत्तव्वं ॥१०७॥
जह राया ववहारा दोसगुणुप्पादगोत्ति आलविदो।
तह जीवो ववहारा दव्वगुणुप्पादगो भणिदो ॥१०८॥
सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥१०९॥
तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो।
मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमंतं ॥११०॥
एदे अचेदणा खलु पुग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा।
ते जदि करंति कम्मं णवि तेसिं वेदगो आदा ॥१११॥
गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जम्हा।
तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि ॥११२॥
जह जीवस्स अणण्णुवओगो कोहो वि तह जइ अणण्णो।
जीवस्साजीवस्स एवमणण्णत्तमावण्णं ॥११३॥
एवमिह जो दु जीवो सो चेव दु णियमदो तहाऽजीवो।
अयमेयत्ते दोसो पच्चयणोकम्मकम्माणं ॥११४॥
अह दे अण्णो कोहो अण्णुवओगप्पगो हवदि चेदा।
जह कोहो तह पच्चय कम्मं णोकम्ममवि अण्णं ॥११५॥
जीवे ण सयं बद्धं ण सयं परिणमदि कम्मभावेण।
जइ पुग्गलदव्वमिणं अप्परिणामी तदा होदि ॥११६॥

व्यवहार से बताया, ज्ञानावरणादि कर्म को आत्मा ।
गहे, करे अरु बांधे, उपजावे वा परिणमावे ॥१०७॥
ज्यौं व्यवहार बताया, राजा प्रजाके दोष गुण करता ।
त्यौं व्यवहार कि आत्मा, पुद्गलके द्रव्य गुण करता ॥१०८॥
सामान्यतया प्रत्यय, चार कहे गये बंधके कर्ता ।
मिथ्यात्व तथा अविरति, कषाय अरु योगको जानो ॥१०९॥
उनके फिर भेद कहे, जीव गुण स्थान रूप हैं तेरह ।
मिथ्यादृष्टी आदिक, लेखें सयोग केवली तक ॥११०॥
पुद्गल कर्म उदयसे, उत्पन्न हुए अतः अचेतन ये ।
वे यदि कर्म करे तो, उनका वेदक नहीं आत्मा ॥१११॥
चूंकि गुणस्थानक ये, आस्रव करते हैं कर्मको इससे ।
जीव अकर्ता निश्चित, ये आस्रव कर्मको करते ॥११२॥
ज्यौं आत्मासे तन्मय, उपयोग तथैव क्रोध हो तन्मय ।
जीव व अजीवको फिर, अभिन्नता प्राप्त होवेगी ॥११३॥
इस तरह जीव जो है, वही नियमसे अजीव होवेगा ।
एकत्व दोष, यह ही, आस्रव नो कर्म कर्मों में ॥११४॥
उपयोगमयी आत्मा, है अन्य तथा क्रोधादि भी अन्य ।
तो क्रोधवत् हि प्रत्यय है, कर्म नो कर्म भी अन्य ॥११५॥
जीव में स्वयं न बंधा, न वह स्वयं कर्मरूप परिणमता ।
पुद्गल यदि यह मानो, कर्म अपरिणामि होवेगा ॥११६॥

कम्मइयवग्गणासु य अपरिणमंतीसु कम्मभावेण ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥११७॥
जीवो परिणामयदे पुग्गलदव्वाणि कम्मभावेण ।
ते सयमपरिणमंते कहं णु परिणामयदि चेदा ॥११८॥
अह सयमेव हि परिणमदि कम्मभावेण पुग्गलं दव्वं ।
जीवो परिणामयदे कम्मं कम्मत्तमिदि मिच्छा ॥११९॥
णियमा कम्मपरिणदं कम्मं चि य होदि पुग्गलं दव्वं ।
तह तं णाणावरणाइपरिणदं मुणसु तच्चेव ॥१२०॥
ण सयं बद्धो कम्मे ण सयं परिणमदि कोहमादीहिं ।
जइ एस तुज्झ जीवो अप्परिणामी तदा होदि ॥१२१॥
अपरिणमंतम्हि सयं जीवे कोहादिएहिं भावेहिं ।
संसारस्स अभावो पसज्जदे संखसमओ वा ॥१२२॥
पुग्गलकम्मं कोहो जीवं परिणामएदि कोहत्तं ।
तं सयमपरिमंतं कहं णु परिणामयदि कोहो ॥१२३॥
अह सयमप्पा परिणमदि कोहभावेण एस दे बुद्धी ।
कोहो परिणामयदे जीवं कोहत्तमिदि मिच्छा ॥१२३॥
कोहुवजुत्तो कोहो माणुवजुत्तो य माणमेवादा ।
माउवजुत्तो माया लोहुवजुत्तो हवे लोहो ॥१२५॥
जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स कम्मस्स ।
णाणिस्स य णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स ॥१२६॥

ये कर्म-वर्गणायें, यदि न परिणमे कर्म भाव से तो ।
भवका अभाव होगा, सांख्य समयकी प्रसक्ति भी होगी ॥११७॥
यदि जीव परिणमावे, पुद्गलको कर्मभाव रूपों में ।
स्वयं अपरिणमचे को, कैसे ये परिणमा देगा ॥११८॥
यदि यह पुद्गल वस्तू, स्वयं हि परिणमे कर्म भावोंसे ।
तो जीव परिणमता, पुद्गलको कर्म यह मिथ्या ॥११९॥
कर्मरूप परिणत ही, पुद्गल ही कर्मरूप होता है ।
सो वह पुद्गल वस्तू, ज्ञानावरणादि परिणत है ॥१२०॥
कर्ममें स्वयं न बंधा, न वह स्वयं क्रोधरूप परिणमता ।
आत्मा यदि यह मानो; जीव अपरिणामि होवेगा ॥१२१॥
यह जीव स्वयं क्रोधादिक भावोंसे न परिणमे तब तो ।
भवका अभाव होगा, सो रूप समयकी प्रसक्ति भी होगी ॥१२२॥
क्रोधादिक पुद्गल विधि, जीवको कर्मरूप परिणमावे ।
स्वयं अपरिणमते को, कैसे विधि परिणमा देगा ॥१२३॥
यदि यह आत्मा वस्तू, स्वयं हि परिणमे क्रोध भावोंसे ।
तो कर्म परिणमाता, आत्माको क्रोध यह मिथ्या ॥१२४॥
क्रोधोपयुक्त आत्मा, क्रोध तथा मान मान उपयोगी ।
मायोपयुक्त माया, लोभ तथा लोभ उपयोगी ॥१२५॥
आत्मा जो भाव करे, है वह जीव भावका कर्त्ता ।
ज्ञानमय भाव बुधका, अज्ञानमय हि अबुध कहें ॥१२६॥

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि ।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा हु कम्माणि ॥१२७॥
णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो ।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा हु णाणमया ॥१२८॥
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायए भावो ।
जम्हा तम्हा भावा अण्णाणमया अणाणिस्स ॥१२९॥
कणयमया भावादो जायंते कुंडलादओ भावा ।
अयमया भावादो जह जायंते तु कडयादी ॥१३०॥
अण्णाणमया भावा अणाणिणो बहुविहावि जायंते ।
णाणिस्स दु णाणमया सव्वे भावा तहा होंति ॥१३१॥
अण्णाणस्स स उदओ जं जीवाणं अतच्चउवलद्धी ।
मिच्छत्तस्स दु उदओ जीवस्स असद्दहाणत्तं ॥१३२॥
उदओ असंजमस्स दु जं जीवाणं हवेइ अविरमणं ।
जो दु कलुसोवओगो जीवाणं सो कसाउदओ ॥१३३॥
तं जाण जोगउदयं जो जीवाणं तु चिट्ठ उच्छाहो ।
सोहणमसोहणं वा कायव्वो विरदिभावो वा ॥१३४॥
एदेसु हेदुभूदेसु कम्मइयवग्गणागयं जं तु ।
परिणमदे अट्ठविहं णाणावरणादिभावेहिं ॥१३५॥
तं खलु जीवणिबद्धं कम्मइयवग्गणागयं जइया ।
तइया दु होदि हेदू जीवो परिणामभावाणं ॥१३६॥

अज्ञका भाव अज्ञानमय है सो वह कर्मका कर्ता ।
ज्ञानमय भाव बुधका, सो वह नहिं कर्मका कर्ता ॥१२७॥
ज्ञानमय भाव से तो, ज्ञान परिणाम ही जनित होता ।
इस कारण ज्ञानीके, सारे परिणाम ज्ञानमय ही हैं ॥१२८॥
भाव अज्ञानमयसे, होता अज्ञान भाव इस कारण ।
अज्ञानी आत्माके, भाव हि अज्ञानमय होते ॥१२९॥
स्वर्णमयी पासासे, होतें उत्पन्न कुण्डलादि विविध ।
लौहमयी वस्तुसे, होतें उत्पन्न लौहमयी ॥१३०॥
अज्ञानी आत्माके, होतें अज्ञानभाव नाना विध ।
ज्ञानी आत्माके तो, ज्ञानमयी भाव ही होते ॥१३१॥
अज्ञानका उदय वह, जो जीवोंको न तत्त्व उपलब्धी ।
मिथ्यात्वका उदय जो, जीवोंके अश्रद्धानपना ॥१३२॥
उदय असंयमका वह, जो जीवोंको न पापसे विरती ।
उदय कषायोंका यह, कलुषित उपयोगका होना ॥१३३॥
योग उदय वह जानों, जो चेष्टोत्साह होय जीवों के ।
शुभ हो तथा अशुभ हो, हेय उपादेय अथवा हो ॥१३४॥
इनके निमित्त होते हि, कार्माणवर्गणाधिगत पुद्गल ।
परिणमता आठ तरह, ज्ञानावरणादि भावों से ॥१३५॥
कार्माण वर्गणागत, वह पुद्गल जीवबद्ध जब होता ।
तब तिन उदय समयमें, जीव हेतु है बिभावों का ॥१३६॥

जीवस्स हु कम्मेण य सह परिणामा हु होंति रागादि ।
एवं जीवो कम्मं च दोवि रागादिमावण्णा ॥१३७॥
एकस्स हु परिणामो जायदि जीवस्स रागमादीहिं ।
ता कम्मोदयहेदूहिं विणा जीवस्स परिणामो ॥१३८॥
जइ जीवेण सहच्चिय पुग्गलदव्वस्स कम्मपरिणामो ।
एवं पुग्गलजीवावि दोवि कम्मत्तमावण्णा ॥१३९॥
एकस्स हु परिणामो पुग्गलदव्वस्स कम्मभावेण ।
ता जीवभावहेदूहिं विणा कम्मस्स परिणामो ॥१४०॥
जीवे कम्मं बद्धं पुट्ठं चेदि ववहारणयभणिदं ।
सुद्धणयस्स हु जीवे अबद्धपुट्ठं हवइ कम्मं ॥१४१॥
कम्मं बद्धमबद्धं जीवे एवं तु जाण णयपक्खं ।
पक्खवातिक्कंतो पुण भण्णदि जो सो समयसारो ॥१४२॥
दोण्हवियणयाण भणियं जाणइ णवरिं तु समयपडिबद्धो ।
ण दु णयपक्खं गिण्हदि किंचिवियणयपक्खपरिहीणो ॥१४३॥
सम्मद्दंसण णाणं एदं लहदित्ति णवरिववदेसं ।
सव्वणय पक्खरहिदो भणिदो जो सो समयसारो ॥१४४॥

इति कर्तृकर्माधिकारः सम्पूर्ण

—:० * ०:—

अथ पुण्यपापाधिकारः

कम्ममसुहं कुसीलं, सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं ।
किह तं होदि सुसीलं, जं संसारं पवेसेदि ॥१४५॥

जीवके राग आदिक, परिणाम विधिके साथ होवें तो।
यों जीव कर्म दो के, रागादि प्रसक्त होवेंगे ॥१३७॥
इन राग आदिमें यदि, होता परिणाम व जीव इकका ही।
तो उदित कर्मसे यह, जीव परिणाम पृथक् ही है ॥१३८॥
कर्म परिणाम पुद्गल का, यदि जीवके साथ होवे तो।
यों कर्म जीव दो के, कर्मत्व प्रसक्त होवेगा ॥१३९॥
इस कर्म भावमें यदि, होता परिणाम एक पुद्गल।
तो जीवभावसे यह, कर्म परिणाम पृथक् ही है ॥१४०॥
छुआ बंधा आत्मामें, है कर्म यह व्यवहारनय कहता।
जीवमें शुद्धनयसे, न बंधा न छुआ है कछु कर्म ॥१४१॥
बद्ध व अबद्ध विधि है, जीवमें पक्षनयका जानो यह।
किन्तु जो पक्ष व्यपगत, उसको ही समयसार कहा ॥१४२॥
शुद्धात्मतत्त्व ज्ञाता, दोनों नय पक्ष जानता केवल।
नहिं कोइ पक्ष गहता, वह तो नय पक्ष परिहारी १४३॥
सर्वनय पक्ष अपगत, जो है उसको हि समयसार कहा।
यह ही केवल सम्यग्दर्शन, संज्ञान कहलाता ॥१४४॥

कर्तृकर्माधिकारः सम्पुर्ण

—:o * o:—

पुण्यपापाधिकार :

है पापकर्म कुत्सित, सुशील है पुण्यकर्म जग जाने।
शुभ है सुशील कैसा, जो भवमें जीवको डारे ॥१४५॥

सोवरिणयं पि णियलं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं ।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं ॥१४६॥
तम्हा दु कुसीलेहि य रायं मा कुणह मा व संसग्गं ।
साधीणो हि विणासो कुसीलसंसग्गरायेण ॥१४७॥
जह णाम कोवि पुरिसो कुच्छियसीलं जणं वियाणित्ता ।
वज्जेदि तेण समयं संसग्गं रायकरणं च ॥१४८॥
एमेव कम्मपयडी सीलसहावं च कुच्छिदं णाऊं ।
वज्जंति परिहरंति य तस्संसग्गं सहावरया ॥१४९॥
रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो ।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज ॥१५०॥
परमट्ठो खलु समओ सुद्धो जो केवली मुणी णाणी ।
तम्हि ट्ठिदा सहावे मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥१५१॥
परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेई ।
तं सव्वं वालतवं वालवदं विंति सव्वण्हू ॥१५२॥
वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति ॥१५३॥
परमट्ठबाहिरा जे ते अण्णाणेण पुण्णमिच्छंति ।
संसारगमणहेदुं वि मोक्खहेउं अजाणंता ॥१५४॥
जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं ।
रायादीपरिहरणं चरणं एसो दु मोक्खपहो ॥१५५॥

जैसे सुवर्ण अथवा, लौह संकल है जीवको बांधे।
त्यौकृत कर्म अशुभ या, शुभ हो सब जीव को बांधे ॥१४६॥
इससे मत राग करो, नहि संसर्ग दोनों कुशीलों से।
स्वाधीन घात निश्चित, कुशील संसर्ग अनुरति से ॥१४७॥
जैसे कोई मानव, कुशीलमय जानकर किसी जनको।
तज देता उसके प्रति, संसर्ग व राग का करना ॥१४०॥
वैसे ही कर्म प्रकृति को, कुत्सित शील जानकर ज्ञानी।
तज देते हैं उसका, संसर्ग व रागका करना ॥१४९॥
रागी विधिको बांधे, छोड़े विधिको विराग विज्ञानी।
यह भागवत वचन है, इससे विधिमें न राग करो ॥१५०॥
परमार्थ समय जो यह, शुद्ध तथा केवल मुनी ज्ञानी।
उस ही स्वभावमें रत, मुनिजन निर्वाण को पाते ॥१५१॥
परमार्थ में न ठहरा; जो कोइ तप करे व व्रत धारे।
सर्वज्ञ देव कहते, बाल तपहि बालव्रत उसको ॥१५२॥
व्रत नियमोंको धरते, शील तथा तप अनेक करते भी।
परमार्थ बाह्य जो है, वे नहिं निर्माण को पाते ॥१५३॥
परमार्थ बाह्य जो हैं, वे नहिं मोक्षके हेतुको जाने।
ससार भ्रमण कारण, पुण्य हि अज्ञान से चाहे ॥१५४॥
जीवादिक तत्त्वोंका, प्रत्यय सम्यक्त्व बोध संज्ञान।
रागादि त्याग चारित यही, त्रितय मोक्षका है पथ ॥१५५॥

मोत्तूण णिच्छयट्ठं ववहारेण विदुसा पवट्टंति ।
परमट्ठमस्सिदाण दु जदीण कम्मक्खओ विहिओ ॥१५६॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो ।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णायव्वं ॥१५७॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो ।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णायव्वं ॥१५८॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलमेलणासत्तो ।
कसायमलोच्छण्णं तह चारित्तं पि णादव्वं ॥१५९॥
सो सव्वणाणदरिसि कम्मरयेण णियेणवच्छण्णो ।
संसारसमावण्णो ण विजाणदि सव्वदो सव्वं ॥१६०॥
सम्मत्तपडिणिवद्धं मिच्छत्तं जिणवरेहिं परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्ति णायव्वो ॥१६१॥
णाणस्स पडिणिवद्धं अण्णाणं जिणवरेहिं परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो अण्णाणी होदि णायव्वो ॥१६२॥
चारित्तपडिणिवद्धं कसायं जिणवरेहिं परिकहियं ।
तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होइ णायव्वो ॥१६३॥

इति पुण्यपापाधिकार: सम्पूर्ण

—:o * o:—

अथ आस्रवाधिकार:

मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य सण्णसण्णा दु ।
बहुविहभेया तस्सेव अणण्णपरिणामा ॥१६४॥

परमार्थ छोड़कर के, ज्ञानी व्यवहार में नहीं लगते ।
क्योंकि परमार्थदर्शी, मुनिके क्षय कर्मका होता ॥१५६॥
ज्यौं वस्त्र श्वेत स्वपक, मल मेलनलिप्त होय ढक जाता ।
त्यौं यह सम्यक्त्व यहां, मिथ्यात्व मलसे ढक जाता ॥१५७॥
ज्यौं वस्त्र श्वेत स्वपक, मलमेलनलिप्त होय ढक जाता ।
त्यौं जानों ज्ञान यहां, अज्ञानमल से ढक जाता ॥१५८॥
ज्यौं वस्त्र श्वेत स्वपक, मलमेलनलिप्त होय ढक जाता ।
त्यौं जानों चारित यह, कषायमल से हि ढक जाता ॥१५९॥
वह सर्वज्ञानदर्शी, लोभि निज कर्म रजसे आच्छाछित ।
संसारमें भटककर, नहिं सबको जान यह सकता ॥१६०॥
सम्यक्त्वका विरोधक, जिनवरने मिथ्यात्वको बताया ।
उसके उदयसे आत्मा, मिथ्यादृष्टी कहा जाता ॥१६१॥
ज्ञानका प्रति निबन्धक, मुनीश अज्ञानको बताते हैं ।
उसके उदयसे आत्मा, अज्ञानी बर्तता जानों ॥१६२॥
चारित्रका विरोधक, मुनीन्द्रने है कषाय बतलाया ।
इसके उदयसे आत्मा, हो जाता है अचारित्री ॥१६३॥

पुण्यपापाधिकारः सम्पूर्ण

—०*०—

आस्त्रवाधिकार :

मिथ्यात्व तथा अविरति, कषाय अरु योग चेतनाचेतन ।
जीवमें विविध प्रत्यय, अभेद परिणाम हैं उसके ॥१६४॥

णाणावरणादीयस्स ते दु कम्मस्स कारणं होंति ।
तेसिं पि होदि जीवो य रागदोसादि भाव करो ॥१६५॥

णत्थि हु आसवबंधो सम्मादिट्ठिस्स आसवणिरोहो ।
संते पुव्वणिवद्धे जाणदि सो ते अवंधंते ॥१६६॥

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो हु वंधगो भणिदो ।
रायादिविप्पमुक्को अवंधगो जाणगो णवरिं ॥१६७॥

पक्के फलम्हि पडिये जह ण फलं वज्झए पुणो विंटे ।
जीवस्स कम्मभावे पडिए ण पुणोदयमुवेई ॥१६८॥

पुढवीपिंडसमाणा पुव्वणिवद्धा हु पच्चया तस्स ।
कम्मसरीरेण हु ते बद्धा सव्वेपि णाणिस्स ॥१६९॥

चहुविह अणेयभेयं वंधंते णाणदंसण गुणेहिं ।
समये समये जम्हा तेण अवंधोत्ति णाणी हु ॥१७०॥

जम्हा हु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि ।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण हु सो वंधगो भणिदो ॥१७१॥

दंसणणाणचरित्तं जं परिणमदे जहण्णभावेण ।
णाणी तेण हु वज्झदि पुग्गलकम्मेण विविहेण ॥१७२॥

सव्वे पुव्वणिवद्धा हु पच्चया संति सम्मदिट्ठिस्स ।
उवओगप्पाओग्ग बंधंते कम्मभावेण ॥१७३॥

संती हु णिरुवभोज्जा वाला इत्थी जहेव पुरिसस्स ।
बंधदि ते उवभोज्जे तरुणी इत्थी जह णरस्स ॥१७४॥

वे प्रत्यय होते हैं, ज्ञानावरणादि कर्मके कारण।
उनका कारण होता, रागद्वेषादिभावयुत आत्मा ॥१६५॥

आस्रव बंध नहीं है, ज्ञानीके किन्तु आस्रव निरवन्धन।
वह तो पूर्व निवद्धों, को जाने भव्य नहिं वांधे॥१६६॥

जीवकृत राग आदिक, भाव बताया जिनेन्द्रने वन्धक।
रागादि मुक्त बंधक, नहिं है वह किन्तु ज्ञायक है॥१६७॥

फलपक्क हो पतित फिर, जैसे वह वृन्तमें नहीं लगता।
कर्मभाव खिरने पर, फिर उनका उदय नहीं होता॥१६८॥

पूर्ववद्ध सब प्रत्यय, ज्ञानीके पृथ्वीपिण्ड सम जानो।
बंधे हुए विधिसे वे, बंधे नहीं किन्तु आत्मासे॥१६९॥

क्योंकि चारों हि आस्रव, ज्ञान गुण परिणमनके कारणसे।
बांधते कर्म नाना, होता ज्ञानी अतः अबन्धक॥१७०॥

चूंकि यह ज्ञान गुण फिर, जघन्य अववोधभावसे नाना।
अन्य रूप परिणमता, सो माना ज्ञानको बंधक॥१७१॥

दर्शन ज्ञान चारित जो, परिणमते हैं जघन्य भावोंसे।
इससे ज्ञानी बंधता, नाना पौद्गलिक कर्मोंसे॥१७२॥

पूर्ववद्ध सब प्रत्यय, ज्ञानीके रह रहे हैं सत्तामें।
उपयोगयुक्त यदि हों, तो बांधे कर्मभावोंसे॥१७३॥

सत्तास्थ निरुपभोग्य, बाला स्त्री यथा है मानवके।
उपभोग्य हुए बांधे, तरुणी नारी यथा नरको॥१७४॥

होदूण णिरुवभोज्जा तह बंधदि जह हवंति उवभोज्जा ।
सत्तट्ठविहा भूदा णाणावरणादिभावेहिं ॥१७५॥
एदेण कारणेण दु सम्मादिट्ठी अबंधगो भणिदो ।
आसवभावाभावे ण पच्चया बंधगा भणिदा ॥१७६॥
रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ।
तम्हा आसवभावेण विणा हेदू ण पच्चया होंति ॥१७७॥
हेदू चदुव्वियप्पो अट्ठवियप्पस्स कारणं भणिदं ।
तेसिं पि य रागादी तेसिमभावे ण वज्झंति ॥१७८॥
जह पुरिसेणाहारो गहिओ परिणमइ सो अणेयविहं ।
मंसवसारुहिरादी भावे उयरग्गिसंजुत्तो ॥१७९॥
तह णाणिस्स दु पुव्वं जे बद्धा पच्चया बहुवियप्पं ।
वज्झंते कम्मं ते णयपरिहीणा उते जीवा ॥१८०॥

इति आस्रवाधिकार सम्पूर्ण

—:० * ०:—

अथ संवराधिकारः

उवओए उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगो ।
कोहे कोहो चेव हि उवओगे णत्थि खलु कोहो ॥१८१॥
अट्ठवियप्पे कम्मे णोकम्मे चावि णत्थि उवओगो ।
उवओगम्हि य कम्मं णोकम्मं चावि णो अत्थि ॥१८२॥
एयं तु अविवरीदं णाणं जइया उ होदि जीवस्स ।
तइया ण किंचि कुव्वदि भावं उवओगसुद्धप्पा ॥१८३॥

वे निरुपभोग्य विधि ज्यौं, पाक समय भोग योग्य हो जावे ।
त्यौं ही ज्ञानावरणादिक पुद्गल कर्मको बांधे ॥१७५॥
इस कारणसे सम्यग्दृष्टी आत्मा अबंधक कहा है ।
क्योंकि रागादि नहिं हों, तो प्रत्यय हैं नहीं बन्धक ॥१७६॥
रति अरति मोह आस्रव, संज्ञानीके न होय इस कारण ।
आस्रव भावके बिना, कर्म कर्मबन्ध हेतु नहीं ॥१७७॥
मिथ्यादि चार प्रत्यय, होते हैं अष्टकर्मके कारण ।
प्रत्ययमि राग हेतुक, रागादि बिना न विधि बांधे ॥१७८॥
ज्यौं नर गृहीत भोजन, होकर जठराग्नियुक्त नाना विध ।
मांस वस्त्र रुधिरादिक, रस भावों रूप परिणमता ॥१७९॥
त्यौं ज्ञानीके पहिले, बद्ध हुए जो अनेक प्रत्यय हैं ।
विविध कर्म यदि बांधे, जानो वे शुद्धनय च्युत हैं ॥१८०॥

आस्रवाधिकार सम्पूर्ण

—:o:*:o:—

संवराधिकार:

उपयोगमें उपयोग, क्रोधादिमें उपयोग नहिं कोई ।
क्रोधमें क्रोध जानों, क्रोधादि न उपयोगमें है ॥१८१॥
कर्म नोकर्ममें नहिं, होता उपयोग शुद्ध परमात्मा ।
उपयोगमें न होते, कर्म व नोकर्म भी कोई ॥१८२॥
यह यथार्थ सत्यप्रज्ञा, होती जब इस सुभव्य आत्माके ।
तब परभाव न करता, केवल उपयोग शुद्धात्मा ॥१८३॥

जह कणयमग्गितवियं पि कणयहावं ण तं परिच्चयइ ।
तह कम्मोदयतविदो ण जहदि णाणी उ णाणित्त ॥१८४॥
एवं जाणइ णाणी अण्णाणी मुणदि रायमेवादं ।
अण्णाणतमोच्छण्णो आदसहावं अयाणंतो ॥१८५॥
सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो हु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहइ ॥१८६॥
अप्पाणमप्पणा रुंधिऊण दो पुण्णपावजोएसु ।
दंसणणाणम्हि ठिदो इच्छाविरओ य अण्णम्हि ॥१८७॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चेयेइ एयत्तं ॥१८८॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अणण्णमओ ।
लहइ अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मविप्पमुक्कं ॥१८९॥
तेसिं हेऊ भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरयभावो य जोगो य ॥१९०॥
हेऊ अभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्सवि णिरोहो ॥१९१॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायइ णिरोहो ।
णोकम्मणिरोहेण य संसारणिरोहणं होई ॥१९२॥

इति संवराधिकारः सम्पूर्णः

ज्यौं अग्नितप्त काञ्चन, काञ्चन परिणामको नहीं तजता ।
त्यौं कर्मोदय पीड़ित, ज्ञान भी ज्ञान नहिं तजता ॥१८४॥

ज्ञानी सुज्ञानता यों, अज्ञानी रागको हि निज माने ।
अज्ञान अन्ध आवृत, यह आत्म स्वभाव नहिं जाने ॥१८५॥

शुद्धात्म तत्त्व ज्ञाता, शुद्ध हि आत्मस्वरूपको पाता ।
जाने अशुद्ध आत्मा, जो वह पावे अशुद्धात्मा ॥१८६॥

आत्माको आत्माके, द्वारा रोकि अघपुण्य योगोंको ।
दर्शन ज्ञानमें, सुस्थित, परमें वाच्छा रहित होकर ॥१८७॥

जो सर्व संगको तजि, आत्मा आत्मीय आपको ध्याता ।
कर्म नो कर्मको नहिं, ध्यावे, चिन्ते स्वकीय केवलता ॥१८८॥

वह दर्शन ज्ञानमयी, अनन्य आत्मीय ध्यानको करता ।
कर्म प्रवियुक्त आत्म, को पाता शीघ्र अपनेमें ॥१८९॥

उनके हेतु बताये, ये अध्यवसान सर्वदर्शीने ।
मिथ्यात्व योग अविरति, अज्ञान कषायमय परिणमता ॥१९०॥

हेतु बिना ज्ञानीके, वास्तव आस्रव निरोध हो जाता ।
आस्रवभाव बिना, कर्मों का भि निरोध हो जाता ॥१९१॥

कर्म विरोध हुआ तब, नो-कर्मोंका निरोध हो जाता ।
नो-कर्मके रुके से, संसार निरोध हो जाता ॥१९२॥

संवराधिकार सम्पूर्ण

—:o ❁ o.—

अथ निर्जराधिकारः

उपभोगमिन्दियेहिं दव्वाणं चेदणाणमिदराणं ।
जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं ॥१९३॥

दव्वे उवभुज्जंते णियमा जायदि सुहं या दुक्खं वा ।
तं सुहदुक्खमुदिण्णं वेददि अह णिज्जरं जादि ॥१९४॥

जह विसमुवभुज्जंतो वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पुग्गलकम्मस्सुदयं तह भुंजदि णेव वज्झये णाणी ॥१९५॥

जह मज्जं पिवमाणो अरदिभावेण मज्जदि ण पुरिसो ।
दव्वुवभोगे अरदो णाणी वि ण वज्झदि तहेव ॥१९६॥

सेवंतो वि ण सेवइ असेवमाणो वि सेवगो कोई ।
पगरणचेट्ठा कस्सवि ण य पायरणोत्ति सो होई ॥१९७॥

उदयविवागो विविदो कम्माणं वण्णिओ जिणवरेहिं ।
ण दु ते मज्झसहावा जाणगभावो दु अहमिक्को ॥१९८॥

पुग्गलकम्मं रागो तस्स विवागोदओ हवदि एसो ।
ण दु एस मज्झ भावो, जाणगभावो हु अहमिक्को ॥१९९॥

एवं सम्मादिट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणयसहावं ।
उदयं कम्मविवागं य मुयदि तच्चं वियाणंतो ॥२००॥

परमाणुमित्तयं पि हु रायादीणं तु विज्जदे जस्स ।
णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरोवि ॥२०१॥

निर्जराधिकार:

उपभोग इन्द्रियोंके द्वारा, चेतन अचेतनोंके जो ।
करता सम्यग्दृष्टी, वह सब है निर्जराहेतू ॥१६३॥

द्रव्य-उपभोग करते, सुख अरु दुःख उत्पन्न होता है ।
उस उदीर्ण सुख दुःखको, वेदत ही कर्म झड़ जाता ॥१६४॥

जैसे विष-उपभोगी, वैद्य पुरुष मरणको नहीं पाता ।
पुद्गल कर्म उदयको, भोगे नहि विज्ञ जन बंधता ॥१६५॥

अरति भावसे जैसे, मदिरा पीता पुरुष नहीं मदता ।
द्रव्य भोगमें तैसे, विरक्त ज्ञानी नहीं बंधता ॥१६६॥

सेता हुआ न सेवे, सेते भी नहिं कोइ सेवक है ।
परजन कार्यनिरत भी, प्राकरणिक भी नहीं होता ॥१६७॥

उदय विपाक विविध है, कर्मोंके श्री मुनीश दर्शाये ।
वे नहिं स्वभाव मेरे, मैं तो हू एक ज्ञायक सत् ॥१६८॥

राग है पुद्गल कर्म, यह सारा ही उदयफल उसका ।
वह भाव नहीं मेरा, मैं तो हू एक ज्ञायक सत् ॥१६९॥

यों सुदृष्टि आत्माको, जाने ज्ञायक स्वभावमय पूरा ।
कर्म विपाक उदयको, तजता वह तत्त्वका ज्ञाता ॥२००॥

परमाणु मात्र भी हो, जिसके रागादि भावकी मात्रा ।
वह सर्वागधर भी, आत्माको जान नहिं सकता ॥२०१॥

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो ।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ॥२०२॥

आदम्हि दव्वभावे अपदे मोत्तूण गिण्ह तह णियदं ।
थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं सहावेण ॥२०३॥

आभिणिसुदोहिमण केवलं च तं होदि एक्कमेव पदं ।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं जादि ॥२०४॥

णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं वहूवि ण लंहति ।
तं गिण्ह णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं ॥२०५॥

एदह्मि रदो णिच्चं संतुट्ठो होहि णिच्चमेदम्हिं ।
एदेण होहि तित्तो होहदि तुह उत्तमं सोक्खं ॥२०६॥

को णाम भणिज्ज वुहो परदव्वं मम इमं हवदि दव्वं ।
अप्पाणमप्पणो परिग्गहं तु णियदं वियाणंतो ॥२०७॥

मज्झं परिग्गहो जइ तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज ।
णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ ॥२०८॥

छिज्जदु वा भिज्जदु वा णिज्जदु वा अहव जादु विप्पलयं ।
जह्मा तह्मा गच्छदु तहवि हु ण परिग्गहो मज्झ २०९॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे धम्मं ।
अपरिग्गहो हु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१०॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि अधम्मं ।
अपरिग्गहो अधम्मस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२११॥

आत्माको नहिं जाने, तथा अनात्मा भि जो नहीं जाने ।
जीवाजीव न जाने, यह सम्यक्दृष्टी कैसे हो ॥२०२॥
चितमें अपद द्रव्य भावोंको, तजि भाव ग्रहण कर अपना ।
यह नियत एक थिर शिव, स्वभावसे लभ्यमान तथा ॥२०३॥
मति श्रुत अवधि मनः पर्यय केवलज्ञान सर्व इक ही पद ।
वह यह परमार्थ जिसे, पाकर निर्वाण मिलता है ॥२०४॥
ज्ञान गुणहीन आत्मा, इस पदको प्राप्त कर नहीं सकते ।
सो यह नियत गहो पद, यदि चाहो कर्मसे मुक्ती ॥२०५॥
इस ज्ञानमें सदा रत, हो संतुष्ट नित्य इस ही में ।
इससे ही तृप्त होओ, तेरे उत्तम हि सुख होगा ॥२०६॥
कौन सुधी है ऐसा, जो परद्रव्यको कह उठे मेरा ।
आत्म परिग्रह आत्मा, निश्चयसे जानता भी यह ॥२०७॥
अन्य परिग्रह मेरा, यदि हो मुझमें अजीवपन होगा ।
ज्ञाता ही मैं इससे, नहिं परिग्रह मेरा कुछ पर ॥२०८॥
छिदो भिदो ले जावो, विनशो अथवा जहां तहां जावो ।
तो भी निश्चयसे कुछ, कोइ परिग्रह नहीं मेरा ॥२०९॥
निर्वाञ्छक अपरिग्रह, कहा है ज्ञानी न चाहता पुण्य ।
इससे पुण्य परिग्रह-विरहित, ज्ञायक पुरुष होता ॥२१०॥
निर्वाञ्छक अपरिग्रह, कहा है ज्ञानी न चाहता पाप ।
इससे पुण्य परिग्रह, विरहित ज्ञायक पुरुष होता ॥२११॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे असणं ।
अपरिग्गहो हु असणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१२॥

अपरिग्गहो अणिच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदे पाणं ।
अपरिग्गहो हु पाणस्स जाणगो तेण सो होदि ॥२१३॥

एमादिये हु विविहे सव्वे भावे य णिच्छदे णाणी ।
जाणगभावो णियदो णीरालंबो हु सव्वत्थ ॥२१४॥

उप्पण्णोदयभोगो विओगवुद्धीए तस्स सो णिच्चं ।
कंखामणागयस्स य उदयस्स ण कुव्वए णाणी ॥२१५॥

जो वेददि वेदिज्जदि समए समए विणस्सदे उहयं ।
तं जाणगो हु णाणी उभयं पि ण कंखइ कयावि ॥२१६॥

बंधुवभोगणिमित्ते अज्झवसाणोदएसु णाणिस्स ।
संसारदेहविषयेसु णेव उप्पज्जदे रागो ॥२१७॥

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
णो लिप्पदि रजयेण हु कद्दममज्झे जहा कणयं ॥२१८॥

अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो ।
लिप्पदि कम्मरएण हु कद्दममज्झे जहा लोहं ॥२१९॥

भुंजंतस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे ।
संखस्स सेदभावो णवि सक्कदि किण्णगो काउं ॥२२०॥

तह णाणिस्स वि विविहे सच्चित्ताचित्तमिस्सिये दव्वे ।
भुंजंतस्सवि णाणं ण सक्कमण्णाणदं णेदुं ॥२२१॥

निर्वाञ्छक अपरिग्रह, कहा है ज्ञानी न चाहता मुक्ति ।
इससे मुक्ति परिग्रह, विरहित ज्ञायक पुरुष होता ॥२१२॥
निर्वाञ्छक अपरिग्रह, कहा है ज्ञानी न चाहता पान ।
इससे पान परिग्रह-विरहित ज्ञायक पुरुष होता ॥२१३॥
इत्यादिक नानाविध, सब भावोंको न चाहता ज्ञानी ।
किन्तु नियत है ज्ञायक, स्वार्थोंमें निरालम्बी ॥२१४॥
वर्तमान भोगोंमें, वियोगमतिमें प्रवृत्ति है जिसकी ।
भावी भोगोंकी वह, ज्ञानी कांक्षा नहीं करता ॥२१५॥
जो वेदक वेद्य उभय, समय समयमें विनष्ट हो जाता ।
सो ज्ञानी ज्ञायक घन, न चाहता उभय भावोंको ॥२१६॥
संसार देह विषयक, जो है बन्धोपभोग के कारण ।
उन सब अध्यवसानों में, ज्ञानी राग नहीं करता ॥२१७॥
सब द्रव्योंमें ज्ञानी, राग प्रमोचन स्वभाव वाला है ।
कर्म मध्यगत रजसे, लिप्त न ज्यों कीचमें सोना ॥२१८॥
किन्तु अज्ञान सेवी, सब द्रव्योंमें प्ररक्त रहता सो ।
कर्म मध्यगत रजसे, लिप्त यथा कीचमें लोहा ॥२१९॥
सजीवा जीव मिश्रित, विविध भोगोंको भोगते भी तो ।
शंखका श्वेत रूपक, नहिं काला किया जा सकता ॥२२०॥
ज्यों भोक्ता भी-नाना, सजीव निर्जीव मिश्र द्रव्योंका ।
ज्ञानीका ज्ञान नहीं, अज्ञानित किया जा सकता ॥२२१॥

जइया स एव संखो सेदसहावं तयं पजहिदूण ।
गच्छेज्ज किएहभावं तइया सुक्कत्तणं पजहे ॥२२२॥

तह णाणी वि हु जइया णाणसहावं तयं पजहिदूण ।
अण्णाणेण परिणदो तइया अण्णाणदं गच्छे ॥२२३॥

पुरिसो जह कोवि इह वित्तिणिमित्तं तु सेवये रायं ।
तो सो ण देइ राया विविहे भोये सुहुप्पाए ॥२२४॥

एमेव जीवपुरिसो कम्मरयं सेवदे सुहणिमित्तं ।
तो सोवि देइ कम्मो विविहे भोये सुहुप्पाए ॥२२५॥

जह पुण सो च्चिय पुरिसो वित्तिणिमित्तं ण सेवए रायं ।
तो सो ण देदि राया विविहे भोए सुहुप्पाए ॥२२६॥

एमेव सम्मदिट्ठी विसयत्थं सेवए ण कम्मरयं ।
तो सो ण देइ कम्मो विविहे भोए सुहुप्पाए ॥२२७॥

सम्माइट्ठी जीवा णिस्संका होंति णिब्भया तेण ।
सत्तभयविप्पमुक्का जम्हा तम्हा दु णिस्संका ॥२२८॥

जो चत्तारि वि पाए छिंददि ते कम्मबंधमोहकरे ।
सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२२९॥

जो दु ण करेदि कंखं कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु ।
सो णिक्कखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३०॥

जो ण करेदि जुगुप्पं चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं ।
सो खलु णिव्विदिगच्छो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३१॥

जब ही वह शंख कभी, उस श्वेत स्वभावको छोड़ करके।
पावे कालापन को, तब ही शुक्लत्व को तजता ॥२२२॥
त्यों ज्ञानी भी जब ही, अपने उस ज्ञानभावको तजकर।
हो अज्ञान विपरिणत, तब ही अज्ञान को पाता ॥२२३॥
जैसे यहं कोइ पुरुष, वृत्ति निमित सेवता हि भूपतिको।
तो वह राजा इसको, सुखकारी भोग देता है ॥२२४॥
वैसे यहं जीव पुरुष, सुख निमित्त कर्मधूल सेता है।
तो वह कर्म भि नाना, सुखकारी भोग देता है ॥२२५॥
जैसे वही पुरुष जब, वृत्ति निमित नहिं सेवता नृपको।
तो वह राजा भि नहीं, सुखकारी भाग देता ॥२२६॥
त्यौं ही सम्यक्दृष्टी, निमित्त कर्म धूल नहिं सेता।
तो वह कर्म भी नहीं, सुखकारी भोग देता ॥२२७॥
सम्यग्दृष्टी आत्मा, होते निःशंक हैं अतः निर्भय।
चूंकि वे सप्तभयसे, मुक्त इसीसे निःशंक कहा ॥२२८॥
विधि बंध मोहकारी, आस्रव चारों हि छेदत है जो।
सो निःशंक आत्मा है, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२२९॥
जो नहिं करता वाञ्छा, कर्मफलों तथा सर्वधर्मोंमें।
वह निःकांक्ष पुरुष है, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२३०॥
जो नहिं करे जुगुप्सा, समस्तधर्मों व वस्तुधर्मोंमें।
है वह निर्विचिकित्सक, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२३१॥

जो हवइ असम्मूढो चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु ।
सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३२॥
जो सिद्धभत्तिजुत्तो उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं ।
सो उवगूहणकारी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३३॥
उम्मग्गं गच्छंतं सगंपि मग्गे ठवेदि जो चेदा ।
सो ठिदिकरणाजुत्तो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३४॥
जो कुणदि वच्छलत्तं तिएहं साहूण मोक्खमग्गम्हि ।
सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३५॥
विज्जारहमारूढो मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा ।
सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो ॥२३६॥

इति निर्जराधिकार सम्पूर्णम्

—.० * ०.—

अथ बन्धाधिकारः

जहणामकोवि पुरिसो णेहभत्तो दु रेणुवहुलम्मि ।
ठाणम्मिठाइदूण य करेइ सत्थेहिं वायामं ॥२३७॥
छिंददि भिंददि य तहा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ताचित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥२३८॥
उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहि करणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किंपच्चयगो दु रयबंधो ॥२३९॥
जो सो दु णेहभावो तम्हि णरे तेण तस्स रयबंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥२४०॥

जो समस्त भावोंमें, मूढ नहीं सत्यदृष्टी रखता है ।
वह है अमूढदृष्टी, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२३२॥
जो सिद्ध भक्ति तत्पर, मलिन भावोंको दूर करता है ।
वह बुध उपगूहक है, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२३३॥
उन्मार्गमें पतित निज, परको जो मार्गमें लगाता है ।
वह मार्ग स्थापक है, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२३४॥
मोक्ष पथ स्थित तीनों, साधन व साधुओंमें रति करता ।
जो बुध वह है वत्सल, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२३५॥
विधारथ आरोही, जो हितकर मार्गको प्रकट करता ।
वह है ज्ञान प्रभावी, सम्यग्दृष्टी उसे जानो ॥२३६॥

निजराधिकार सम्पूर्ण

—०*०—

बन्धाधिकारः

जैसे तैल लगाये, कोइ पुरुष धूलिपूर्ण भूमिमें ।
स्थित होकर शस्त्रोंसे, नाना व्यायाम करता है ॥२३७॥
ताड़ वास कदलीको, चिच्छेदता भेदता हि व्यायामी ।
करता उपघात वहां, सजीव निर्जीव द्रव्योंका ॥२३८॥
नानाविध करणोंसे, उपघात कर रहे हुए पुरुषके ।
चिपटी हुइ धूलीका, किस कारणसे हुआ बंधन ॥२३९॥
स्नेह (तैल) लगा उस नरके, इस कारणसे हि धूलिबंध हुआ ।
निश्चयसे यह जानो, हुआ नहीं काय चेष्टासे ॥२४०॥

एवं मिच्छाइट्ठी वट्टंतो वहुविहासुचिट्ठासु ।
रायाई उवओगे कुव्वंतो णिप्पइ रयेण ॥२४१॥

जह पुण सो चेव णरो णेहे सव्वम्हि अवणिये संते ।
रेणुवहुलम्मि ठाणे करेदि सत्थेहिं वायामं ॥२४२॥

छिंददि भिंददि य तम्हा तालीतलकयलिवंसपिंडीओ ।
सच्चित्ता चित्ताणं करेइ दव्वाणमुवघायं ॥२४३॥

उवघायं कुव्वंतस्स तस्स णाणाविहेहिकरणेहिं ।
णिच्छयदो चिंतिज्जहु किंपच्चयगोण रयवंधो ॥२४४॥

जो सो अणेहभावो तम्हि णरे तेण तस्सऽरयवंधो ।
णिच्छयदो विण्णेयं ण कायचेट्ठाहिं सेसाहिं ॥२४५॥

एवं सम्माइट्ठी वट्टंतो वहुविहेसु जागेसु ।
अकरंतो उवओगे रागाइ ण लिप्पइ रयेण ॥२४६॥

जो मण्णादि हिंसामि य हिंसिज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥२४७॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं ण हरेसि तुमं कह ते मरणं कयं तेहिं ॥२४८॥

आउक्खयेण मरणं जीवाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
आउं न हरंति तुहं कह ते मरणं कयं तेहिं ॥२४९॥

जो मण्णादि जीवेमि य जीविज्जामि य परेहिं सत्तेहिं ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥२५०॥

यौं यह मिथ्यादृष्टी, विविध चेष्टामें वर्तमान हुआ।
उपयोगमें रागादि, करता लिपता बंधे रजसे ॥२४१॥
जैसे फिर वही पुरुष, समस्त उस तैलको अलग करके।
उस धूलि भरी क्षितिमें, करता श्रमपूर्ण शास्त्रोंसे ॥२४२॥
ताड़ वास कदलीको, विच्छेदता भेदता पुरुष वैसे।
करता उपघात वहां, सजीव निर्जीव द्रव्योंका ॥२४३॥
नाना विध कारणोंसे, उपघात कर रहे हुए पुरुषके।
निश्चयसे सोचो, किस कारणसे धूलि वंध नहीं ॥२४४॥
तैल नहीं उस नरकें, इससे उसके न धूलिवंध हुआ।
निश्चयसे यह जानों, हुआ न कुछ कायचेष्टासे ॥२४५॥
यौं यह सम्यग्दृष्टी, विविध भोगोंसे वर्तमान हुआ।
उपयोगमें रागादि, करता न न कर्मसे बंधता ॥२४६॥
मैं पर-जीवोंसे घत, जाता पर को व घातता हूं मैं।
यों माने अज्ञानी, इससे विपरीत है ज्ञानी ॥२४७॥
आयु विलयसे मरना, जीवोंका हो मुनीश यह कहते।
आयु नहिं तुम हरते, फिर कैसे घात कर सकते ॥२४८॥
आयु विलसे मरना, जीवोंका हो मुनीश यह कहते।
आयु हरी जाती नहि, किमि उनसे घात हो सकता ॥२४९॥
पर से मैं हूं जीवित, परजीवोंको भि मैं जिलाता हू।
यौं माने अज्ञानी, इससे विपरीत है ज्ञानी ॥२५०॥

आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण देसि तुमं कहं तए जीवियं कयं तेसिं ॥२५१॥
आऊदयेण जीवदि जीवो एवं भणंति सव्वण्हू ।
आउं च ण दिंति तुहं कहं णु ते जीवियं कयं तेहिं ॥२५२॥
जो अप्पणा दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्तेत्ति ।
सो मूढो अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥२५३॥
कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण देसि तुहं दुक्खिसुहिदो कहं कया ते ॥२५४॥
कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च ण दिंति तुहं कदोसि कह दुक्खिदो तेहिं ॥२५५॥
कम्मोदयेण जीवा दुक्खिदसुहिदा हवंति जदि सव्वे ।
कम्मं च दिंति तुहं कह तं सुहिदो कदो तेहिं ॥२५६॥
जो मरदि जो हुहिदो जायदि कम्मोदयेण सो सव्वो ।
तम्हा दु मारिदो दे दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥२५७॥
जो ण मरदि ण य दुहिदो सो वि य कम्मोदयेण चेव खलु ।
तम्हा ण मादिरो णो दुहाविदो चेदि ण हु मिच्छा ॥२५८॥
एसा दु जा मई दे दुःखिदसुहिदे करेमि सत्तेति ।
एसा दे मूढमई सुहासुहं बंधए कम्मं ॥२५९॥
दुक्खिदसुहिदे सत्ते करेमि जं एवमज्झवसिदं ।
तं पापबंधगं वा पुण्णस्स वि बंधगं होदि ॥२६०॥

आयु उदयसे जीना, जीवोंका हो मुनीश यह कहते ।
आयु नहीं तुम देते, फिर किमि जीवित भि कर सकते ॥२५१॥
आयु उदयसे जीना, जीवोंका हो मुनीश यह कहते ।
आयु न दी जा सकती, फिर उनसे जीवना कैसे ॥२५२॥
स्वयं इतर जीवोंको, सुखी दुखी करता हू जो माने ।
वह मोही अज्ञानी, इससे विपरीत है ज्ञानी ॥२५३॥
कर्म उदयसे प्राणी स्वयं हि होते सुखी दुखी उनको ।
कर्म न दे सकते तुम, किये फिर सुखी दुःखी कैसे ॥२५४॥
कर्म उदयसे प्राणी, स्वयं हि होते सुखी दुखी तुमको ।
कर्म दिया नहीं जाता, उनसे फिर दुख मिले कैसे ॥२५५॥
कर्म उदयसे प्राणी, स्वयं हि होते सुखी दुखी तुमको ।
कर्म दिया नहिं जाता, उनसे फिर सुख मिले कैसे ॥२५६॥
जो मरे दुखी होवे, वह सब है कर्म उदयसे फिर तो ।
मारा दुखी किया मैं, क्या ये भाव हैं नहीं मिथ्या ॥२५७॥
जो न मरे न दुखी हो, वह सब भी कर्म उदयसे फिर तो ।
मारा न न दुखी किया, क्या ये भाव हैं नहीं मिथ्या ॥२५८॥
यदि तेरी मति यह हो, मैं जीवोंको सुखी दुखी करता ।
तो यह मोहित मति ही, बांधे शुभ या अशुभविधिको ॥२५९॥
'दुखी सुखी करता हूं,' हो अध्यवसान भाव यदि तेरा ।
तो वह अघका बंधक, अथवा है पुण्यका बंधक ॥२६०॥

मारिमि जीवावेमि य स जंत्ते एवमज्झवसिदं ते ।
तं पापवंधगं वा पुण्णस्स त्रि वंधगं होदि ॥२६१॥
अज्झवसिदेण वंधो सत्ते मारेउ मा व मारेउ ।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स ॥२६२॥
एवमलिये अदत्ते अवंभचेरे परिग्गहे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण हुवज्झए पात्रं ॥२६३॥
तहवि य सच्चे दत्ते बंभे अपरिग्गहत्तणे चेव ।
कीरइ अज्झवसाणं जं तेण हु वज्झए पुण्णं ॥२६४॥
वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं तु होइ जीवाणं ।
णय वत्थुदो हु बंधो अज्झवसाणेण बंधोत्थि ॥२६५॥
दुक्खिदसुहिदे जीवे करेमि वंधेमि तह विमोचेमि ।
जा एसा मूढमही णिरत्थया सा हु दे मिच्छा ॥२६६॥
अज्झवसाणणिमित्तं जीवा वज्झंति कम्मणा जदि हि ।
मुच्चंति मोक्खमग्गे ठिदा य ता किं करोसि तुमं ॥२६७॥
सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण तिरियणेरइये ।
देवमणुये य सव्वे पुण्णं पात्रं च णेयविहं ॥२६८॥
धम्माधम्मं च तहा जीवाजीवे अलोयलोयं च ।
सव्वे करेइ जीवो अज्झवसाणेण अप्पाणं ॥२६९॥
एदाणि णत्थि जेसिं अज्झवसाणाणि एवमादीणि ।
ते असुहेण सुहेण व कम्मेण मुणीण लिप्पंति ॥२७०॥

'मारु जीवन देऊं', हो अध्यवसान भाव यदि तेरा ।
तो वह, अघका बंधक, अथवा है पुण्यका बंधक ॥२६१॥
अध्यवसानहिं बन्धन, प्राणी मारो तथा न ही मारो ।
निश्चय नयके मतमें, जीवोंका बन्ध विवरण यह ॥२६२॥
यों ही अलीक चोरी, अब्रह्मचर्य तथा परिग्रहमें ।
अध्यवसान करे तो, उससे तो पाप बंधता है ॥२६३॥
वैसे सत्य अचोरी, अपरिग्रह ब्रह्मचर्यमें जो कुछ ।
अध्यवसान करे तो, उसमें तो पुण्य बंधता है ॥२६४॥
वस्तु अवलम्ब करके, होता अध्यवसित भाव जीवोंके ।
नहिं बन्ध वस्तुसे है, है अध्यवसानसे बन्धन ॥२६५॥
दुखी सुखी जीवोंको, करता हू बांधता छुड़ाता हूँ ।
यह ऐसी मूढमती, निरर्थिका है अतः मिथ्या ॥२६६॥
अध्यवसान-हि कारण, बन्धते हैं जीव कर्मसे यदि वा ।
मोक्ष मार्गमें सुस्थित, मुक्त बने क्या किया तुमने ॥२६७॥
अध्यवसान हि प्राणी, सब कुछ करता हि जीव अपनेको ।
पशु, नारक, देव, मनुज, नानाविध पुण्य पापोंको ॥२६८॥
धर्म अथवा अधर्म हि, जीव अजीव व अलोक लोक तथा ।
अध्यवसान हि प्राणी, अपनेको सर्व कर लेता ॥२६९॥
अध्यवसान कहे जो, वे आदिक अन्य सब नहीं जिनके ।
शुभ अशुभ कर्मसे वे, मुनिजन नहिं लिप्त होते हैं ॥२७०॥

बुद्धी ववसाओ वि य अज्झवसाणं मई य विण्णाणं ।
एकट्ठमेव सव्वं चित्तं भावो य परिणामो ॥२७१॥

एवं ववहारणओ पडिसिद्धो जाण णिच्छयणयेण ।
णिच्छयणयासिदा पुण मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥२७२॥

वदसमिदीगुत्तीओ सील तवं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
कुव्वंतोवि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी हु ॥२७३॥

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो हु जो अधीयेज्ज ।
पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥२७४॥

सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि ।
धम्मं भोगणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥२७५॥

आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयं ।
छज्जीवणिकं च तहा भणइ चरित्तं तु ववहारो ॥२७६॥

आदा खु मज्झ णाणं आदा मे दंसणं चरित्तं च ।
आदा पच्चक्खाणं आदा मे संवरो जोगो ॥२७७॥

जह फलिहमणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमादीहिं ।
रंगिज्जदि अण्णेहिं हु सो रत्तादीहिं दव्वेहिं ॥२७८॥

एवं णाणी सुद्धो ण सयं परिणमइ रायमादीहिं ।
राइज्जदि अण्णेहिं हु सो रागादीहि दोसेहिं ॥२७९॥

ण य रायदोसमोहं कुव्वदि णाणी कसायभावं वा ।
सय मप्पणो ण सो तेण कारगो तेसिं भावाणं ॥२८०॥

बुद्धि व्यवसाय अथवा, अध्यवसान विज्ञान चित्त तथा ।
परिणाम भाव अरु मति, ये सब एकार्थवाचक हैं ॥२७१॥

निश्चयनयसे जानो, यह सब व्यवहारनय निषिद्ध अतः ।
निश्चय नयाश्रयी मुनि, पाते निर्वाण पदको हैं ॥२७२॥

जो जिनेन्द्र बतलाये, व्रतसमिति गुप्ति तथा शील तपको ।
यह अभव्य करता भी, अज्ञानी मूढ दृष्टी है ॥२७३॥

मुक्तिका अश्रद्धानी, अभव्य प्राणी पढ़े श्रुताङ्गोंको ।
पढ़ना गुण नहिं करता, क्योंकि उसे ज्ञानभक्ति नहीं ॥२७४॥

कभी धर्मकी श्रद्धा, प्रतीति रुचि या झुकाव भी करता ।
वह सब भोग निमित्त हि, किन्तु नहिं कर्मक्षयके लिये ॥२७५॥

आचारादि शब्द श्रुत, ज्ञान व जीवादि माननां दर्शन ।
षट् जीव काय रक्षा, चारित व्यवहार करता है ॥२७६॥

निश्चयसे आत्मा ही, दर्शन ज्ञान चारित्र है मेरा ।
प्रत्याख्यान भि आत्मा, संवर अरु योग भी आत्मा ॥२७७॥

स्फटिक मणि शुद्ध जैसे, स्वयं न रागादि रूप परिणमता ।
रक्तिम वह हो जाता, वह अन्य हि रक्तादि द्रव्योंसे ॥२७८॥

ज्ञानी भि शुद्ध वैसे, स्वयं न रागादि रूप परिणमता ।
रागी वह हो जाता, व अन्य हि रागादि दोषोंसे ॥२७९॥

ज्ञायकस्वभाव आत्मा, न स्वयं करता कषाय रागादिक ।
इससे यह आत्मा उन, भावोंका है नहीं कर्ता ॥२८०॥

रायम्हि दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जे भावा ।
तेहिं हु परिणमंतो रायाई बंधदि पुणोवि ॥२८१॥

रायम्हि य दोसम्हि य कसायकम्मेसु चेव जो भावा ।
तेहि हु परिणमंतो रायाई बंधदे चेदा ॥२८२॥

अपडिक्कमणं दुविहं अपच्चखाणं तहेव विण्णेयं ।
एएणुवंएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥२८३॥

अपडिक्कमणं दुविहं दव्वे भावे तहा अपच्चखाणं ।
एएणुवएसेण य अकारओ वण्णिओ चेया ॥२८४॥

जावं अपडिक्कमणं अपच्चखाणं च दव्वभावाणं ।
कुव्वइ आदा तावं कत्ता सो होइ णायव्वो ॥२८५॥

आधाकम्मादीआ पुग्गलदव्वस्स जे इमे दोसा ।
कह ते कुव्वइ णाणी परदव्व गुणा उ जे णिच्चं ॥२८६॥

आधाकम्मं उद्देसियं च पुग्गलमयं इमं दव्वं ।
कह तं मम होइ कयं जं णिच्चमचेदणं उत्तं ॥२८७॥

इति बन्धाधिकारः सम्पूर्णम्

—:o * o:—

रति अरति कषाय प्रकृति, के होने पर हि भाव जो होते ।
उनसे परिणमता यह, रागादिक बांधता फिर भी ॥२८१॥

रति अरति कशाय प्रकृति के, होने पर हि भाव जो होते ।
उनसे परिणमता यह, रागादिक बांधता आत्मा ॥२८२॥

हैं अप्रतिक्रमण दो, अप्रत्याख्यान भी बताये दो ।
इससे हि सिद्ध यह है, चेतयिता तो अकारक है ॥२८३॥

अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान है, द्विविध द्रव्यभावमयी ।
इससे हि सिद्ध यह है, चेतयिता तो अकारक है ॥२८४॥

द्रव्य भावमें करता, अप्रतिक्रमण अप्रत्याख्यान जब तक ।
करता है यह आत्मा, तब तक कर्ता इसे जानो ॥२८५॥

अधःकर्मादि दूषण, पुद्गल द्रव्यके दोष हैं उनको ।
ज्ञानी किमु कर सकता, वे परिणति नित्य पुद्गलकी ॥२८६॥

अधःकर्म औद्देशिक, पुद्गलमय द्रव्य है कहा इनको ।
नित्य अचेतन फिर वे, कैसे मेरे किये होते ॥२८७॥

बन्धाधिकारः सम्पूर्ण

अथ मोक्षाधिकारः

जह णाम कोवि पुरिसो बंधणयम्हि चिरकालपडिबद्धो।
तिव्वं मंदसहावं कालं च वियाणए तस्स ॥२८८॥

जइ णवि कुणइच्छेदं णमुच्चए तेण बंधणवसो सं।
कालेण उ बहुएणवि ण सो णरो पावइ विमोक्खं ॥२८९॥

इय कम्मबंधणाणं पएसठिए पयडिमेवमणुभागं।
जाणंतो वि ण मुच्चइ मुच्चइ सो चेव जइ सुद्धो ॥२९०॥

जह बंधे चिंतंतो बंधणबद्धो ण पावइ विमोक्खं।
तह बंधे चिंतंतो जीवोविण पावइ विमोक्खं ॥२९१॥

जह बंधे छित्तूण य बंधणबद्धो उ पावइ विमोक्खं।
तह बंधे छित्तूण य जीवो संपावइ विमोक्खं ॥२९२॥

बंधाणं च सहावं वियाणिओ अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो विरज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणई ॥२९३॥

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं।
पण्णाछेदणयेण उ छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥२९४॥

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहि।
बंधो छे एदव्वो सुद्धो अप्पा य घेत्तव्वो ॥२९५॥

कह सो घिप्पइ अप्पा पण्णाए सो उ घिप्पए अप्पा।
जह पण्णाइ विहत्तो तह पण्णा एव घेत्तव्वो ॥२९६॥

मोक्षाधिकारः

जैसे कोई पुरुष जो, बन्धनमें चिरकालसे बंधा हो ।
तीव्र मंद भावोंको, बन्धकालको जानता हो ॥२८८॥

यदि वह नर नहिं काटे, बंधको बन्धके वश हुआ तो ।
बहुत कालमें भी उस, बन्धनसे मुक्ति नहिं पाता ॥२८९॥

त्यौं कर्मबन्धनोंके, थिति अनुभाग प्रदेश प्रकृतियोंको ।
जानता भि नहिं छूटे, छूटे यदि शुद्ध हो जावे ॥२९०॥

ज्यौं बन्ध चिन्तता भी, बन्धबद्ध नहिं मुक्तिको पाता ।
त्यौं बन्ध चिन्तता भी, यह जीव भि मोक्ष नहिं पाता ॥२९१॥

ज्यौं बन्ध काट करके, बन्धनबद्ध नर मुक्तिको पाता ।
त्यौं बन्ध काट करके, आत्मा भी मोक्षको पाता ॥२९२॥

विधि बंधस्वभावोंको, अरु आत्म स्वभावको जान करके ।
बंध विरक्त हुआ जो, सो कर्म विमोक्षको करता ॥२९३॥

प्रज्ञा छेनी द्वारा, अपने अपने नियत लक्षणोंसे ।
जीव तथा बंधोंमें, भेद किये भिन्न वे होते ॥२९४॥

जीव तथा बंधोंमें, नियत लक्षणोंसे भेद यों करना ।
बंध वहां छुट जावे, शुद्धात्मा गृहीत हो जावे ॥२९५॥

किमि गृहीत हो आत्मा, प्रज्ञासे वह गृहीत होता है ।
ज्यौं प्रज्ञासे भेदा, त्यौं प्रज्ञासे ग्रहण करना ॥२९६॥

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥२९७॥

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥२९८॥

पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णायव्वा ॥२९९॥

को णाम भणिज्ज बुहो णाउं सव्वे पराइए भावे ।
मज्झमिणंति य वयणं जाणंतो अप्पयं सुद्धं ॥३००॥

थेयाई अवराहे कुव्वदि जो सो उ संकिदो भमई ।
मा वज्झेज्जं केण वि चोरोत्ति जणम्मि वियरंतो ॥३०१॥

जो ण कुणइ अवराहे सो णिस्संको दु जणवए भमदि ।
णवि तस्स वज्झिदुं जे चिंता उपज्जइ कयावि ॥३०२॥

सवं हि सावराहो वज्झामि अहं तु संकिदो चेया ।
जइ पुण णिरवराहो णिस्संकोहं ण वज्झामि ॥३०३॥

संसिद्धिराधसिद्धं साधियमाराधियं च एयट्ठं ।
अवगयराधो जो खलु चेया सो होइ अवराधो ॥३०४॥

जो पुण णिरवराहो चेया णिस्संकिओ उ सो होइ ।
आराहणाए णिच्चं वट्टेइ अहंति जाणंतो ॥३०५॥

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्तीय ।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होइ विसकुंभो ॥३०६॥

प्रज्ञासे यों गहना, जो चेतक सो हि मैं हूं निश्चयसे ।
अवशिष्ट भाव मुझसे, भिन्न तथा पर पृथक जानों ॥२९७॥

प्रज्ञासे यों गहना, जो द्रष्टा सो हि मैं हूं निश्चयसे ।
अवशिष्ट भाव मुझसे, भिन्न तथा पर पृथक् जानो ॥२९८॥

प्रज्ञासे यों गहना, जो ज्ञाता सो हि मैं हू निश्चयसे ।
अवशिष्ट भाव मुझसे, भिन्न तथा पर पृथक् जानो ॥२९९॥

सब परभावोंको पर, आत्माको शुद्ध जानने वाला ।
कौन बुध यह कहेगा, पर भावोंको किये मेरे ॥३००॥

चौर्यादिक अपराधोंको, जो करता सशंक भ्रमता है ।
चोर समझकर लोगोंके, द्वारा मैं न बंध जाऊं ॥३०१॥

जो अपराध न करता, वह निःशंक हो नगरमें भ्रमता ।
उसको बन्ध जानेकी, चिन्ता उत्पन्न नहीं होती ॥३०२॥

यौं मैं जब अपराधी, तो शंकित हो कर्मसे बन्धूंगा ।
यदि होऊं निरपराधी, तो निःशंक हो नहिं बन्धूंगा ॥३०३॥

संसिद्धि राध साधित, आराधित सिद्ध सर्व एकार्थक ।
जो जीव राध अपगत, सो आत्मा है निरपराधी ॥३०३॥

जो जीव निरपराधी, वह निःशंक निःशल्य हो जाता ।
निजको निज लखता यह, लगता आत्मानुराधनमें ॥३०५॥

प्रतिक्रमण अथवा प्रति-सरण, परिहार धारणा निवृत्ती ।
निन्दा गर्हा शुद्धी, ये हैं विषकुम्भ आठों ही ॥३०६॥

अपडिकमणं अपडिसरणं अप्परिहारो अधारणा चेव ।
अणियत्ती य अणिंदाऽगरहाऽसोही अमयकुंभो ॥३०७॥

इति मोक्षाधिकार सम्पूर्णम्

—:०:*:०:—

अथ सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः

दविये जं उप्पज्जइ गुणेहिं तं तेहिं जाणसु अणण्णं ।
जह कडयादीहिं दु पज्जयेहिं कणयं अणण्णमिहं ॥३०८॥
जीवस्सा जीवस्स दु जे परिणामा दु देसिया सुत्ते ।
तं जीवमजीवं वा तेहिमणण्णं वियाणाहि ॥३०९॥
ण कुदो चि वि उप्पणो जम्हा कज्जं ण तेण सो आदा ।
उप्पादेदि ण किंचिवि कारणमवि तेण ण स होइ ॥३१०॥
कम्मं पडुच्च कत्ता कत्तारं तह पडुच्च कम्माणि ।
उप्पंज्जंति य णियमा सिद्धी दु ण दीसए अण्णा ॥३११॥
चेया उ पयडीयट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ।
पयडीवि चेययट्ठं उप्पज्जइ विणस्सइ ॥३१२॥
एवं बन्धो उ दोण्हं पि अण्णोण्णपच्चया हवे ।
अप्पणो पयडीए य संसारो तेण जायए ॥३१३॥
जा एसो पयडीयट्ठं चेया णेव विमुंचए ।
अयाणओ हवे ताव मिच्छादिट्ठी असंजओ ॥३१४॥
जया विमुंचए चेया कम्मप्फलमणं तयं ।
तया विमुत्तो हवई जाणओ पासओ मुणी ॥३१५॥

अप्रतिक्रमण अप्रति-सरण परिहार धारणा अगर्हा ।
अनिवृत्ति वा अनिन्दा, अशुधि अमृत कम ये आठों ॥३०७॥

मोक्षाधिकार सम्पूर्ण

—:० ✱ ०:—

सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारः

जो द्रव्य जिन गुणोंमें, परिणमता वह अनन्य है उनसे ।
ज्यौं कटकादि दशाओं से, अनन्य है सुवर्ण यहां ॥३०८॥
जीव व अजीवके जो, परिणतियां हैं बताइ ग्रन्थों में ।
उससे अनन्य जानो, उस जीव अजीव वस्तुको ॥३०९॥
नहिं उत्पन्न किसीसे, इस कारण कार्य है नहीं आत्मा ।
उत्पन्न नहीं करता, परको इससे न कारण वह ॥३१०॥
कर्मोंको आश्रयकर, कर्ता कर्ताभि कर्म आश्रय कर ।
होते उत्पन्न यहाँ जानो, नहिं अन्यथा सिद्धी ॥३११॥
आत्म प्रकृति के निमित्त उपजती विनशती तथा ।
प्रकृति भी जीवके, निमित्त उपजती विनशती तथा ॥३१२॥
होता यौं बन्ध दोनोंका, परस्पर के निमित्त से ।
आत्मा तथा प्रकृतीके, होता भव इस बन्ध से ॥३१३॥
प्राकृतिक इन तन्त्रोंको, जब तक जीवन छोड़ता ।
अज्ञानी बना तब तक, मिथ्यादृष्टी असंयमी ॥३१४॥
जब छोड़ देता आत्मा, अनन्त सब कर्मफल ।
तब निर्बन्ध ही होता, ज्ञाता द्रष्टा व संयमी ॥३१५॥

अण्णाणी कम्मफलं पयडिसहावट्ठिओ दु वेदेदि ।
णाणी पुण कम्मफलं जाणइ उदियं ण वेदेइ ॥३१६॥

ण मुयइ पयडिमभव्वो सुट्ठुवि अज्झाइऊण सत्थाणि ।
गुडदुद्धंपि पिवंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥३१७॥

णिव्वेयसमावण्णो णाणी कम्मप्फलं वियाणेई ।
मदुरं कडुयं बहुविहमवेयओ तेण सो होई ॥३१८॥

णवि कुव्वइ ण वि वेयइ णाणी कम्माइं वहुपयाराइं ।
जाणइ पुण कम्मफलं वन्धं पुण्णं च पावं च ॥३१९॥

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बन्धमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

लोयस्स कुणइ विण्हू सुरणारयतिरियमाणुसे सत्ते ।
समणाणं पि य अप्पा जइ कुव्वइ छव्विहे काये ॥३२१॥

लोगसमणाणमेयं सिद्धंतं जइ ण दीसइ विसेसो ।
लोयस्स कुणइ विण्ह समणाणवि अप्पओ कुणइ ॥३२२॥

एवं ण कोवि मोक्खो दीसइ लोयसमणाणं दोण्हंपि ।
णिच्चं कुव्वंताणं सदेव मणुयासुरे लोए ॥३२३॥

ववहारभासिएण उ परदव्वं मम भणंति अविदियत्था ।
जाणंति णिच्छयेण उ ण य मह परमाणुमिच्चमवि किंचि॥३२४॥

जह कोवि णरो जंपइ अम्हं गामविसयणयर रट्ठं ।
ण य हुंति तस्स ताणि उ भणइ य मोहेण सो अप्पा ॥३२५॥

अज्ञानी विधिफल को, प्रकृति स्वभावस्थ हेय अनुभवता ।
ज्ञानी उदित कर्मफल को, जाने भोगता नहिं है ॥३१६॥

नहिं छोड़ता प्रकृतिको, अभव्य अच्छे भि शास्त्रको पढ़कर ।
गुड़ दूध पानकर ज्यौं, न सर्प निर्विष कभी होते ॥३१७॥

वैराग्य प्राप्त ज्ञानी, मधुर कटुक विविध कर्मके फलको ।
जानता मात्र केवल, इससे उनका अवेदक वह ॥३१८॥

नहिं कर्ता नहिं भोक्ता, ज्ञानी नाना प्रकार कर्मोंका ।
जानता मात्र विधिफल, बन्ध तथा पुण्य पापों को ॥३१९॥

ज्ञान नयन दृष्टी ज्यौं, होय अकर्ता तथा अभोक्ता भी ।
बन्ध मोक्ष कर्मोदय, निर्जर को जानता वह है ॥३२०॥

जग कहे विष्णु करता, सुर नारक पशु मनुष्य प्राणीको ।
कहें श्रमण भी ऐसा, आत्मा षट् कायको करता ॥३२१॥

लोक श्रमण दोनोंके, इस आशयमें दिखे न कुछ अन्तर ।
लोकके विष्णु करता, श्रमणों के भि आत्मा करता ॥३२२॥

इस तरह लोक श्रमणों, दोनोंके भि नहिं मोक्ष हो सकता ।
क्योंकि दोनों समझते, परको इस सृष्टि का कर्ता ॥३२३॥

व्यवहार वचन लेकर, मोही परद्रव्यको कहें मेरा ।
ज्ञानी निश्चय माने, मेरा अणुमात्र भी नहिं कुछ ॥३२४॥

जैसे कोइ कहे नर, ग्राम नगर देश राष्ट्र मेरा है ।
किन्तु नहीं वे उसके, वह तो यौं मोहसे कहता ॥३२५॥

एमेव मिच्छादिट्ठी णाणी णिस्संसयं हवइ एसो ।
जो परदव्वं मम इदि जाणंतो अप्पयं कुणइ ॥३२६॥

तम्हा ण मेत्ति णिच्चा दोण्हं वि एयाण कत्तविवसायं ।
परदव्वे जाणंतो जाणिज्जो दिट्ठिरहि याणं ॥३२७॥

मिच्छत्तं जइ पयडी मिच्छादिट्ठी करेइ अप्पाणं ।
तम्हा अचेदणा दे पयडी णणु कारगो पत्तो ॥३२८॥

अहवा एसो जीवो पुग्गलदव्वस्स कुणइ मिच्छत्तं ।
तम्हा पुग्गलदव्वं मिच्छाइट्ठी ण पुण जीवो ॥३२९॥

अह जीवो पयडी तह पुग्गलदव्वं कुणंति मिच्छत्तं ।
तम्हा दोहिं कदं तं दोण्णिव भुंजंति तस्स फलं ॥३३०॥

अह ण पयडी ण जीवो पुग्गलदव्वं करेदि मिच्छत्तं ।
तम्हा पुग्गलदव्वं मिच्छत्तं तं तु ण हु मिच्छा ॥३३१॥

कम्मेहिं हु अण्णाणी किज्जइ णाणी तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहिं सुवाविज्जइ जग्गाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ॥३३२॥

कम्मेदि सुहाविज्जइ दुक्खाविज्जइ तहेव कम्मेहिं ।
कम्मेहिं य मिच्छत्तं णिज्जइ णिज्जइ असंजमं चेव ॥३३३॥

कम्मेहिं भमाडिज्जइ उड्ढमहो चावि तिरियालोयं च ।
कम्मेहि चेव किज्जइ सुहासुहं जित्तियं किंचि ॥३३४॥

जम्हा कम्मं कुव्वइ कम्मं देई हरत्ति जं किंचि ।
तम्हा उ सव्वजीवो अकारया हुंति आवण्णा ॥३३५॥

वैसे हि पर-पदार्थोंको, अपना जानि आत्ममय करता ।
यह आत्मा भी मिथ्यादृष्टी, होता है निःसंशय ॥३२६॥
सो लौकिक श्रमणों के, परमें कर्तृत्वभाव को लखकर ।
पर निविक्त के ज्ञानी, मिथ्यादृष्टी उन्हें कहते ॥३२७॥
यदि मिथ्यात्व प्रकृति, मिथ्यादृष्टी आत्माको करता है ।
तो फिर प्रकृति अचेतन, ही कारक प्राप्त होवेगा ॥३२८॥
अथवा यदि जीव करे, पुद्गल द्रव्यके मिथ्या प्रकृतिको ।
तो पुद्गल ही मिथ्यादृष्टी, हुआ किन्तु जीव नहीं ॥३२९॥
यदि जीव प्रकृति दोनों, हि पुद्गल के मिथ्यात्वको करते ।
तो दोनों के, द्वारा, कृत विधिका फल भजें दोनों ॥३३०॥
यदि प्रकृति जीव दोनों, पुद्गल मिथ्यातत्त्व नहीं करते ।
पुद्गल द्रव्य मिथ्यात्व है, यह कहना बने मिथ्या ॥३३१॥
कर्मोंसे अज्ञानी, किया, ज्ञाता ज्ञानी भि कर्मोंसे ।
कर्म सुला देते हैं, कर्म हि इसको जगा देते ॥३३२॥
कर्म सुखी करता है, दुखी भि होता तथैव कर्मोंसे ।
कर्म हि मिथ्यात्व तथा, असंयम भावको करता ॥३३३॥
कर्म भ्रमाता रहता, ऊर्ध्व अधः मध्यलोकमें इसको ।
कर्म किया करते हैं, शुभ व अशुभ भाव भी सब कुछ ॥३३४॥
क्योंकि कर्म करता है, देता हरता है कर्म ही सब कुछ ।
इससे समस्त आत्मा, अकारक हि प्राप्त होते हैं ॥३३५॥

पुरिसित्थियाहिलासी इत्थीकम्मं च पुरिसमहिलसइ।
एसा आयरियपरंपरागया एरिसी दु सुई ॥३३६॥
तम्हा ण कोवि जीओ अवंभचारी उ अह्म उवएसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं अहिलसइ इदि भणियं ॥३३७॥
जम्हा घाएइ परं परेण घाइज्जए य सा पयडी।
एएणच्छेण किर भण्णइ परघायणामित्ति ॥३३८॥
तम्हा ण कोवि जीवो वघायओ अत्थि अह्म उवदेसे।
जम्हा कम्मं चेव हि कम्मं घाएदि इहि भणियं ॥३३९॥
एवं संखुवएसं जेउ परूविंति एरिसं समणा।
तेसिं पयडी कुव्वइ अप्पा य अकारया सव्वे ॥३४०॥
अहवा मण्णसि मज्झं अप्पा अप्पाणमप्पणो कुणई।
एसो मिच्छसहावो तुम्हं एयं मुणंतस्स ॥३४१॥
अप्पा णिच्चो असंखिज्जपदेसो देसिओ उ समयम्हि।
णवि सो सक्कइ तत्तो हीणो अहिओ य काउं जे ॥३४२॥
जीवस्स जीवरूवं वित्थरदो जाण लोगमित्तं खु।
तत्तो सो किं हीणो अहिओ व कहं कुणइ दव्वं ॥३४३॥
अह जाणओ उ भावो णाणसहावेण अत्थि इत्ति मयं।
तम्हा ण वि अप्पा अप्पयं तु सयमप्पणो कुणइ ॥३४४॥
केहिं चि दु पज्जयेहिं विणस्सएणेव केहिं चि दु जीवो।
जम्हा तम्हा कुव्वदि सो वा अण्णो वा णेयंतो ॥३४५॥

पुरुष वेद नारीको, स्त्री वेद भि कर्म पुरुषको चाहे ।
यह है आचार्य परंपरागता श्रुति भी तत्साधक ॥३३६॥
अभिलाषा करता है, कर्मकी कर्म यह बताया जब ।
तब फिर जीव भि कोई, अव्यभिचारी न हो सकता ॥३३७॥
चूंकि प्रकृति ही परको, घाते परसे व घात उसका हो ।
इस ही कारण उसका, परघात प्रकृति नाम हुआ ॥३३८॥
इस कारणसे आत्मा, घातक नहि है हमारे आशयसे ।
क्योंकि कर्मको कर्म हि, घाता करता बताया है ॥३३९॥
ऐसे सांख्याशय को, इस प्रकार श्रमण जो प्रकट करते ।
उनके प्रकृति है कर्ता, होते आत्मा अकारक सब ॥३४०॥
यदि मानो यह आत्मा, अपने आपका आप करता है ।
तो मान्यता तुम्हारी है, मिथ्याभावकी यह सब ॥३४१॥
जीव असंख्य प्रदेशी नित्य बताया जिनेन्द्र शासनमें ।
उससे कभी न छोटा, न बड़ा भी किया जा सकता ॥३४२॥
जीवका जीव रूपक, विस्तृत लोक परिणाम तक जानो ।
उससे हीन अधिक क्या, कैसे है कोई कर सकता ॥३४३॥
यदि ऐसा मानो यह, ज्ञायक निज ज्ञान भावसे है ही ।
तो सिद्ध हुआ आत्मा, अपनेको आप नहिं करता ॥३४४॥
चूंकि किन्हीं पर्यायोंसे, नशता जीव किन्हींसे न नशे ।
इससे वही है कर्ता, अथवा अन्य है यह सच सब ॥३४५॥

केहिं चि दु पज्जयेहिं विणस्सए णेव केहिं चि दु जीवो ।
जम्हा तम्हा वेददि सो वा अण्णो व णेयंतो ॥३४६॥

जो चेव कुणइ सो चि य ण वेयए जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णायव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥३४७॥

अण्णो करेइ अण्णो परिभुंजइ जस्स एस सिद्धंतो ।
सो जीवो णायव्वो मिच्छादिट्ठी अणारिहदो ॥३४८॥

जह सिप्पिओ उ कम्मं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वदि ण य तम्मओ होइ ॥३४९॥

जह सिप्पिओ उ करणेहिं कुव्वइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणेहिं कुव्वइ ण य तम्मओ होइ ॥३५०॥

जह सिप्पिओ उ करणाणि गिण्हइ ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो करणाणि उ गिण्हइ ण य तम्मओ होइ ॥३५१॥

जह सिप्पिउ कम्मफलं भुंजदि ण य सो उ तम्मओ होइ ।
तह जीवो कम्मफलं भुंजइ ण य तम्मओ होइ ॥३५२॥

एवं ववहारस्स वत्तव्वं दरिसणं समासेण ।
सुणु णिच्छयस्स वयणं परिणामकयं तु जं होइ ॥३५३॥

जह सिप्पिओ उ चिट्ठं कुव्वइ हवइ य तहा अणण्णो से ।
तह जीवो वि य कम्मं कुव्वइ हवइ य अणण्णो से ॥३५४॥

जह चिट्ठं कुव्वंतो उ सिप्पिओ णिच्च दुक्खिओ होइ ।
तत्तो सिया अणण्णो तह चेट्ठंतो दुही जीवो ॥३५५॥

दर्शनज्ञान चारित्र कुछ भी, नहिं है अचेतन विषयमें।
तब फिर क्या घात करे, उन विषयोंमें सुधा आत्मा ॥३६६॥
दर्शन ज्ञान चारित्र, कुछ भी नहिं है अचेतन कर्ममें।
तब फिर क्या घात करे, उन कर्मोंमें सुधा आत्मा ॥३६७॥
दर्शन ज्ञान चारित्र, कुछ भी नहिं है अचेतन निचयमें।
तब फिर क्या घात करें, उन देहोंमें सुधा आत्मा ॥३६८॥
दर्शनज्ञान चारित्र का, जो है घात होना बताया।
पुद्गल द्रव्यका वहां नहिं, कोइ घात बतलाया ॥३६९॥
जीवके कोइ जो गुण, है नहिं वे अन्य किन्हीं द्रव्योंमें।
इससे सम्यग्दृष्टी के नहिं है राग विषयों में ॥३७०॥
रति अरति मोह, आत्माकी, होती हैं अनन्य परिणतियाँ।
इस कारणसे रागादिक, शब्दादिकमें नहीं है ॥३७१॥
अन्य द्रव्यके द्वारा, अन्य द्रव्यका गुण नहिं किया जाता।
इस कारण द्रव्य सभी, उत्पन्न स्वभाव से होते ॥३७२॥
निन्दा स्तुति कीय वचन, रूप विविध परिणमे हि पुद्गल ही।
उनको सुन क्यों रूसे, तूषे 'मुझको कहा' भ्रम करि ॥३७३॥
शब्द विपरिणत पुद्गल, वह तुझसे सर्वथा पृथक् है ज्ञ।
तुझको कहा नहीं कुछ, तब तू बन अज्ञ रुष क्यों ॥३७४॥
शुभ अशुभ शब्द तुझको, नहिं प्रेरें मुझको तुम सुन ही लो।
श्रोत्र विषयगत इसको, लेने आत्मा नहीं आता ॥३७५॥

असुहं सुहं च रूवं ण तं भणइ पिच्छ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं चक्खुविसयमागयं रूवं ॥३७६॥
असुहो सुहो व गंधो ण तं भणइ जिग्घ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं घाणविसयमागयं गंधं ॥३७७॥
असुहो सुहो व रसो ण तं भणइ रसय मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं रसणविसयमागयं तु रसं ॥३७८॥
असुहो सुहो व फासो ण तं भणइ फुससु मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं ॥३७९॥
असुहो सुहो व गुणो ण तं भणइ बुज्झ मंति सो चेव।
णय एइ विणिग्गहिउं कायविसयमागयं फासं ॥३८०॥
असुहं सुहं च दव्वं ण तं भणइ बुज्झ मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं बुद्धि विसयमागयं दव्वं ॥३८१॥
एयं तु जाणिऊण उवसमं णेव गच्छई मूढो।
णिग्गहमणा परस्स य सयं च बुद्धिं सिवमपत्तो ॥३८२॥
कम्मं जं पुव्वकयं सुहासुहमणेयवित्थरविसेसं।
तत्तो णियत्तए अप्पयं तु जो सो पडिक्कमणं ॥३८३॥
कम्मं जं सुहमसुहं जम्हि य भावम्हि वज्झइ भविस्सं।
तत्तो णियत्तए जो सो पच्चक्खाणं हवइ चेया ॥३८४॥
जं सुहमसुहमुदिण्णं संपडि य अणेयवित्थरविसेसं।
तं दोसं जो चेयइ सो खलु आलोयणं चेया ॥३८५॥

शुभ अशुभ रूप तुमको, नहिं प्रेरें मुझको तुम देखो ही ।
चक्षु विषयगत इसको, लेने आत्मा नहीं आता ॥३७६॥
शुभ अशुभ गन्ध तुझको, नहिं प्रेरें मुझको तुम सूंघो ही ।
घ्राण विषयगत इसको, लेने आत्मा नहीं आता ॥३७७॥
शुभ व अशुभ रस तुझको, नहिं प्रेरें मुझको तुम चख ही लो ।
रसनविषयगत इसको, लेने आत्मा नहीं आता ॥३७८॥
शुभ अशुभ परस तुझको, नहिं प्रेरें मुझको तुम छू ही लो ।
काय विषयगत इसको, लेने आत्मा नहीं आता ॥३७९॥
शुभ व अशुभ गुण तुझको, नहिं प्रेरें मुझको तुम जानो ही ।
शुद्ध विषयगत इसको, लेने आत्मा नहीं आता ॥३८०॥
शुभ अशुभ द्रव्य तुझको, नहिं प्रेरें मुझको तुम जानो ही ।
बुद्धि विषयगत इसको, लेने आत्मा नहीं आता ॥३८१॥
मूढ़ यों जानकर भी, उपशम भावको प्राप्त नहीं होता ।
क्योंकि परग्रहण स्वचिक, स्वयं शिवा बुद्धि नहिं पाता ॥३८२॥
शुभ अशुभ विविध विस्तृत, पूर्वकृत कर्म जो हुए उनसे ।
स्वयं को छुड़ाता जो, वह जीव प्रतिक्रमणमय है ॥३८३॥
जिस भावके हुए से, शुभ व अशुभ कर्मबद्ध हो उससे ।
स्वयंको छुड़ाता जो, वह प्रत्याख्यानमय आत्मा ॥३८४॥
शुभ अशुभ विविध विस्तृत, कर्म अभी जो उदीर्ण हैं उनको ।
दोष रूप जो जाने, आत्मा आलोचनामय वह ॥३८५॥

णिच्चं पच्चक्खाणं कुव्वइ णिच्चं य पडिकमदि जो ।
णिच्चं आलोचेयइ सो हु चरित्तं हवइ चेया ॥३८६॥

वेदंतो कम्मफलं अप्पाणं कुणइ जो दु कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८७॥

वेदंतो कम्मफलं मए कयं मुणइ जो दु कम्मफलं ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८८॥

वेदंतो कम्मफलं सुहिदो दुहिदो य हवदि जो चेदा ।
सो तं पुणोवि बंधइ वीयं दुक्खस्स अट्ठविहं ॥३८९॥

सत्थं णाणं ण हवइ जम्हा सत्थं ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति ॥३९०॥

सद्दो णाणं ण हवइ जम्हा सद्दो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सद्दं जिणा विंति ॥३९१॥

रूवं णाणं ण हवइ जम्हा रूवं ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं रूवं जिणा विंति ॥३९२॥

वण्णो णाणं ण हवइ जम्हा वण्णो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं वण्णं जिणा विंति ॥३९३॥

गंधो णाणं ण हवइ जम्हा गंधो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं गंधं जिणा विंति ॥३९४॥

ण रसो दु हवदि णाणं जम्हा दु रसो ण याणए किंचि ।
तम्हा अण्णं णाणं रसं य अण्णं जिणा विंति ॥३९५॥

चूंकि किन्हीं पर्यायों से, नशता जीव किन्हींसे न नशे ।
इससे वही है भोक्ता, अथवा अन्य है यह सच सब ॥३४६॥
जो कर्ता वही नहीं, भोक्ता जिसका विचार हो ऐसा ।
उसको जानो मिथ्यादृष्टी, जिन समयसे बाहिर ॥३४७॥
अन्य कर्ता व भोक्ता, होता जिसका विचार हो ऐसा ।
उसको जानो मिथ्यादृष्टी, जिन समयसे बाहिर ॥३४८॥
जैसे शिल्पी करता, भूषण कर्म नहिं कर्मसे तन्मय ।
वैसे जीव भि करता, कर्म नहीं कर्मसे तन्मय ॥३४९॥
जैसे शिल्पी करता, करणोंसे करणमें नहीं तन्मय ।
वैसे जीव भि करता, करणोंसे किन्तु नहिं तन्मय ॥३५०॥
जैसे शिल्पी गहता, करणोंको करणमें नहिं तन्मय ।
वैसे जीव भि गहता, करणोंको किन्तु नहिं तन्मय ॥३५१॥
ज्यौं शिल्पी कृतिफलको, फलसे न तन्मयी होता ।
त्यौं जीव कर्मफलको, भोगे नहिं तन्मयी होता ॥३५२॥
यौं व्यवहाराशय का, दर्शन संक्षेप से बताया है ।
अब निज परिणाम विहित, निश्चयनयका वचन सुनिये॥३५३॥
ज्यौं शिल्पी करता है, चेष्टा उससे अनन्य होता वह ।
त्यौं भावकर्म करता, जीव भि उससे अनन्य हुआ ॥३५४॥
ज्यौं चेष्टा करता यह, शिल्पी फलमें अभिन्न दुःख पाता ।
त्यौं चेष्टा कर आत्मा, फलमें भि अभिन्न दुख पाता ॥३५५॥

जह सेडिया हु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ ।
तह जाणओ हु ण परस्स जाणओ जाणओ सो हु ॥३५६॥

जह सेडिया हु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ ।
तह पासओ हु ण परस्स पासओ पासओ सो हु ॥३५७॥

जह सेडिया हु ण परस्स सेडिया सेडिया य सा होइ ।
तह संजओ हु ण परस्स संजओ संजओ सोइ ॥३५८॥

जह सेडिया हु ण परस्स सेडिया सेडिया हु सा होइ ।
तह दंसणं हु ण परस्स दंसणं दंसणं तं तु ॥३५९॥

एवं तु णिच्छयणयस्स भासियं णाणदंसणचरित्ते ।
सुणु ववहारणयस्स वत्तव्वं से समासेण ॥३६०॥

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं जाणइ णायावि सयेण भावेण ॥३६१॥

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं पस्सइ जीवोवि सयेण भावेण ॥३६२॥

जह परदव्वं सेडिदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं विजहइ णायावि सएण भावेण ॥३६३॥

जह परदव्वं सेडदि हु सेडिया अप्पणो सहावेण ।
तह परदव्वं सद्दहइ सम्मादिट्ठी सहावेण ॥३६४॥

एवं ववहारस्स हु विणिच्छओ णाणदंसणचरित्ते ।
भणिओ अण्णेसु वि पज्जएसु एमेव णादव्वो ॥३६५॥

ज्यों सेटिका न परकी, सेटिका सेटिका ही होती है ।
त्यों ज्ञायक नहीं परका, ज्ञायक ज्ञायक हि होता है ॥३५६॥
ज्यों सेटिका न परकी, सेटिका सेटिका ही होती है ।
त्यों दर्शक नहिं परका, दर्शक दर्शक हि होता है ॥३५७॥
ज्यों सेटिका न परकी, सेटिका सेटिका ही होती है ।
त्यों संयत नहिं परका, संयत संयत हि होता है ॥३५८॥
ज्यों सेटिका न परकी, सेटिका सेटिका ही होती है ।
त्यों दर्शक नहिं परका, दर्शक दर्शक हि होता है ॥३५९॥
यों निश्चयका आश्रय, दर्शण ज्ञान चारित्रमें भाषित ।
अब व्यवहारनय को, सुनो सुसंक्षेपमें कहते ॥३६०॥
ज्यों परको श्वेत करे, सेटिका यहां स्वकीय प्रकृतीसे ।
त्यों परको जाने यह, ज्ञाता भि स्वकीय भाव हि से ॥३६१॥
ज्यों परको श्वेत करें, सेटिका यहां स्वकीय प्रकृतीसे ।
त्यों परको देखे यह, आत्मा भि स्वकीय भाव हि से ॥३६२॥
ज्यों परको श्वेत करे, सेटिका यहां स्वकीय प्रकृतीसे ।
त्यों परको त्यागे यह, आत्मा भि स्वकीय भाव हि से ॥३६३॥
ज्यों परको श्वेत करे, सेटिका यहां स्वकीय प्रकृतीसे ।
त्यों परको सरधानें, सम्यग्दृष्टी स्वभाव हि से ॥३६४॥
यों व्यवहार विनिश्चय, दर्शन ज्ञान चारित्रमें जानो ।
ऐसा ही अन्य सकल, पर्यायोंमें भि नय जानो ॥३६५॥

दंसणणाण चरितं किंचि विणधि हु अचेयणे विसए।
तम्हा किं घासय दे चेदयिदा तेसु विसए सु ॥३६६॥
दंसणणाणचरित्तं किंचि विणत्थि हु अचेयणे कम्मे।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कम्मेसु ॥३६७॥
दंसणणाणचरित्तं किंचिवि णत्थि हु अचेयणे काये।
तम्हा किं घादयदे चेदयिदा तेसु कायेसु ॥३६८॥
णाणस्स दंसणस्सयभणिओ घाओतहा चरित्तस्स।
णवि तहिं पुग्गलदव्वस्स कोउ विघाओउ णिदिहो ॥३६९॥
जीवस्स जे गुणाकेइ णत्थि खलु ते परेसु दव्वेसु।
तम्हा सम्माइट्ठिस्स णत्थि रागो उ विसयेसु ॥३७०॥
रागो दोसो मोहो जीवस्सेव य अणण्णपरिणामा।
एएण कारणेण उ सदादिसु णत्थि रागादी ॥३७१॥
अण्णदवियेण अण्णदवियस्स ण कीरए गुणुप्पाओ।
तम्हा उ सव्व दव्वा उप्पजंते सहावेण ॥३७२॥
णिंदियसंथुयवयणाणि पोग्गला परिणमंति वहुयाणि।
ताणि सुणिऊण रूसदि तूसदि य अहं पुणो भविदो ॥३७३॥
पोग्गलदव्वं सद्दत्तपरिणयं तस्स जइ गुणो अण्णो।
तम्हा ण तुमं भणिओ किंचिवि कि रूसमि अवुद्धो ॥३७४॥
असुहो सुहो व सद्दो ण तं भणइ सुणसु मंति सो चेव।
ण य एइ विणिग्गहिउं सोयविसयमागयं सद्दं ॥३७५॥

नित्य करे जो आलोचन, प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान तथा ।
वह आत्मा होता है, स्वयं स्वचेतक व चारित्री ॥३८६॥

कर्मफल वेदता जो, उसको निज रूप है बना लेता ।
वह फिर भी बांध लेता, दुख बीज हि अष्ट कर्मोंको ॥३८७॥

कर्मफल वेदता जो, यह मैंने किया मानता ऐसे ।
वह फिर भि बांध लेता, दुख बीज हि अष्ट कर्मोंको ॥३८८॥

वेदता कर्मफल जो, हो जाता है सुखी दुखी आत्मा ।
वह फिर भि बांध लेता, दुख बीज हि अष्ट कर्मोंको ॥३८९॥

शास्त्रज्ञान नहिं होता, क्योंकि नहीं शास्त्र जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, शास्त्र पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९०॥

शब्द ज्ञान नहीं होता, क्योंकि नहीं शब्द जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, शास्त्र पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९१॥

रूप ज्ञान नहीं होता, क्योंकि नहीं रूप जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, रूप पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९२॥

वर्णज्ञान नहीं होता, क्योंकि नहीं वर्ण जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, वर्ण पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९३॥

गंध ज्ञान नहीं होता, क्योंकि नहीं गंध जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, गन्ध पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९४॥

रस ज्ञान नहीं होता, क्योंकि रस नहीं जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, गन्ध पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९५॥

फासो ण हवइ णाणं जम्हा फासो ण याणए किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥३९६॥
कम्मं णाणं ण हवइ जम्हा कम्मं ण याणए किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं फासं जिणा विंति ॥३९७॥
धम्मो णाणं ण हवइ जम्हा धम्मो ण याणए किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं धम्मं जिणा विंति ॥३९८॥
णाणमधम्मो ण हवइ जम्हाऽधम्मो ण याणए किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णमधम्मं जिणा विंति ॥३९९॥
कालो णाणं ण हवइ जम्हा कालो ण याणए किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं कालं जिणा विंति ४००॥
आयासं पि ण णाणं जम्हा यासं ण याणए किंचि।
तम्हा यासं अण्णं अण्णं जिणा विंति ॥४०१॥
णज्झवसाणं णाणं अज्झवसाणं अचेदणं जम्हा।
तम्हा अण्णं णाणं अज्झवसाणं तहा अण्णं ॥४०२॥
जम्हा जाणइ णिच्चं तम्हा जीवो दु जाणओ णाणी।
णाणं च जाणयादो अव्वदिरित्तं मुणेयव्वं ॥४०३॥
णाणं सम्मादिट्ठी दु संजमं सुत्तमंगपुव्वगयं।
धम्माधम्मं च तहा पवज्जं अब्भुवंति बुहा ॥४०४॥
अत्ता जस्सामुत्तो ण हु सो आहारओ हवइ एवं।
आहारो खलु मुत्तो जम्हा सो पुग्गलमओ उ ॥४०५॥

स्पर्श ज्ञान नहिं होता, क्योंकि नहीं स्पर्श जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, स्पर्श पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९६॥
कर्मज्ञान नहीं होता, क्योंकि नहीं कर्म जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, कर्म पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९७॥
धर्म ज्ञान नहीं होता, क्योंकि नहीं धर्म जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, धर्म पृथक् यों कहा प्रभुने ॥३९८॥
न अधर्म ज्ञान होता, क्योंकि अधर्म नहीं जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, अधर्म पर यों कहा प्रभुने ॥३९९॥
काल ज्ञान नहिं होता, क्योंकि नहीं काल जानता कुछ भी ।
इससे ज्ञान पृथक् है, काल पृथक् यों कहा प्रभुने ॥४००॥
आकाश ज्ञान नहीं है, क्योंकि आकाश जानता नहीं कुछ ।
इससे ज्ञान पृथक् है, आकाश पृथक् कहा प्रभुने ॥४०१॥
अध्यवसान ज्ञान नहीं, क्योंकि अध्यवसान भी है अचेतन ।
इससे ज्ञान पृथक् है, तथा है अध्यवसान पृथक् ॥४०२॥
जानता नित्य आत्मा, इससे ज्ञानी है आत्मा ज्ञायक ।
है अभिन्न ज्ञायक से, ज्ञान सदा तन्मयी जानो ॥४०३॥
ज्ञाना हि सम्यग्दृष्टी, संयम अंग पूर्वगत सूत्र भी यह ।
धर्म अधर्म व दीक्षा, बुधजन इस ज्ञानको कहते ॥४०४॥
जिसके अमूर्त आत्मा, वह आहारक कभी नहीं होता ।
क्योंकि आहार मूर्तिक, होता पौद्गलिक होने से ॥४०५॥

णवि सक्कइ घित्तुं जं ण विमोत्तुं जं य जं परद्दव्वं ।
सो कोविय तस्स गुणो पाउगिओ विस्सो वावि ॥४०६॥

तम्हा उ जो विसुद्धो चेया सो णेव गिण्हए किंचि ।
णेव विमुंचइ किंचिवि जीवाजीवाण दव्वाणं ॥४०७॥

पाखंडीलिंगाणि व गिहलिंगाणि व बहुप्पयाराणि ।
घित्तुं वदंति मूढा लिंगमिणं मोक्खमग्गोति ॥४०८॥

ण उ होदि मोक्खमग्गो लिंगं जं देहणिम्ममा अरिहा ।
लिंगं मुइत्तु दंसणणाणचरित्ताणि सेयंति ॥४०९॥

णवि एस मोक्खमग्गो पाखंडीगिहमयाणि लिंगाणि ।
दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गं जिणा विंति ॥४१०॥

तम्हा दु हित्तु लिंगे सागारणगारएहिं वा गहिए ।
दंसणणाणचरित्ते अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥४११॥

मोक्खपहे अप्पाणं ठवेहि तं चेवं झाहि तं चेय ।
तत्थेव विहर णिच्चं मा विहरसु अण्णदव्वेसु ॥४१२॥

जो अन्य द्रव्य उसका, ग्रहण विमोचन किया न जा सकता।
ऐसा ही द्रव्योंका, प्रायोगिक वैस्रसिक गुण है ॥४०६॥

तब जो विशुद्ध आत्मा, वह जीव अजीव द्रव्य परमें से।
कुछ भी ग्रहण न करता, तथा नहीं छोड़ता कुछ भी ॥४०७॥

पाखण्डी लिङ्गोंको, अथवा बहुविध गृहस्थ लिङ्गोंको।
धारण करि अज्ञ कहे लिङ्ग, यही मोक्षका पथ है ॥४०८॥

लिङ्ग नहिं मोक्षका पथ, क्योंकि जिनेशने देह निर्मम हो।
लिङ्ग बुद्धि तज करके, दर्शन ज्ञान चारित्रको सेया ॥४०९॥

पाखण्डी व गृहस्थों का, लिङ्ग न कोइ है मोक्षका पथ।
दर्शन ज्ञान चारित्र हि, मोक्षका मार्ग जिन कहते ॥४१०॥

इससे सागार तथा अनगारों के गृहीत लिङ्गों को।
सजि दृष्टि ज्ञान चरितमय, शिव पथमें युक्त कर निजको ॥४११॥

शिवपथ में आत्माको थापो, ध्याओ व अनुभवो उसको।
उस ही में नित्य विचर, मत विचारो अन्य द्रव्योंमें ॥४१२॥

पाखंडीलिंगेसु व गिहिलिंगेसु व वहुप्पयारेसु ।
कुव्वंति जे ममत्तं तेहिं ण णायं समयसारं ॥४१३॥

ववहारिओ पुण णओ दोण्णिवि लिंगाणि भणइ मोक्खपहे ।
णिच्छयणओ ण इच्छइ मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥४१४॥

जो समयपाहुडमिणं पडिहुणं अत्थतच्चदो णाउं ।
अत्थे ठाही चेया सो होही उत्तमं सोक्खं ॥४१५॥

इति सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार समाप्तम्

एव श्री समयप्राभृत सम्पूर्णम्

—:०*०:—

पाखण्डी लिङ्गोंमें तथा विविध सब गृहस्थ लिङ्गोंमें ।
जो ममत्व करते उनको, न समयसार ज्ञात हुआ ॥४१३॥

व्यवहारनय बताता, दोनों ही लिङ्ग मोक्षके पथ हैं ।
निश्चय सब लिङ्गको, शिवपथमें इष्ट नहिं करता ॥४१४॥

जो भि समय प्राभृतको, पढ़कर सत्यार्थ तत्त्वसे लखकर ।
अर्थे भव्य ठहरेगा, वह सहजानन्दमय होगा ॥४१५॥

सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार समाप्त

इस प्रकार श्री समयसारप्रकाश सम्पूर्ण हुआ ।

—०*०—

सोरठा

सुसमयप्राभृतशास्त्र, कुन्दकुन्द ऋषिराजकृत ।
है अनुवादितमात्र, गुरुवाणीकी भक्तिसे ॥

अनुवादरचनासपूर्ति तिथि— चैत्र कृष्णा अमावस्या
वीर निर्वाण सम्वत् २४८८

प्रवचनसारप्रकाश

अथ ज्ञानाधिकारः

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्मयलं ।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कन्तारं ॥१॥
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विशुद्धसब्भावे ।
समणे य णाणदंसणचरित्तववीरियायारे ॥२॥
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेयं ।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते ॥३॥
किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं ।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं ॥४॥
तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज ।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥५॥
संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं ।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो ॥६॥
चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥७॥
परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं ।
तह्मा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो ॥८॥

प्रवचनसारप्रकाश

ज्ञानाधिकारः

शाश्वत ज्ञानानन्द प्रवचनसारप्रकाश।
स्वानुभूतिगोचर नमूं शुद्ध सिद्धसकाश॥

यह मैं सुरासुरनरेन्द्रवंदित रिपुघातिकर्ममलव्यपगत।
तीर्थमय धर्मकर्ता, वर्द्धमान देवको प्रणमूं॥१॥
शेष तीर्थेश व सकल, सिद्ध विशुद्ध सद्भावमयको।
दर्शन ज्ञान चरित तप, वीर्याचारेश श्रमणोंको॥२॥
उन उन सबको युगपत्, अथवा प्रत्येक एकशः प्रणमूं।
क्षेत्र विदेह स्थित वर्तमान, अरहन्त को वन्दूं॥३॥
अरहंतों सिद्धों को, तथा गणेशों को नमन करके।
उपाध्याय वर्गों को, तथा सर्व साधुवृन्दों को॥४॥
उनके विशुद्ध दर्शन, ज्ञान प्रधानी चिदाश्रम हि पाकर।
साम्य श्रामण्य पाऊं, जिससे शिव लब्धि होती है॥५॥
नृसुरासुरेन्द्र वैभवपूर्वक निर्वाण प्राप्त होता है।
दर्शन ज्ञान प्रधानी चारित से ये हि जीवों को॥६॥
चारित्र धर्म धर्म भि, साम्य बताया व साम्य भी क्या है।
मोह क्षोभ से विरहित, अविकृत परिणाम आत्माका॥७॥
द्रव्य जिस भावसे परिणयता उस काल तन्मयी होता।
इससे हि धर्म परिणत, आत्माको धर्म हि मानो॥८॥

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो ॥६॥

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो ।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो ॥१०॥

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो ।
पावदि णिव्बाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं ॥११॥

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिधुदो भमइ अच्चंतं ॥१२॥

अइसयमादसमुत्थं विसयातीद अणोवममणंतं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धु वओगप्पसिद्धाणं ॥१३॥

सुविदिदपदत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो ।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगोत्ति ॥१४॥

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ ।
भूदो सयमेवादा जादि परं णेयभूदाणं ॥१५॥

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो ।
भूदा सयमेवादा हवदि सयंभुत्ति णिद्दिट्ठो ॥१६॥

भंगविहीणो य भवो संभवपरिवज्जिदो विणासो हि ।
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवायो ॥१७॥

उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अत्थजादस्स ।
पज्जाएण दु केणवि अत्थो खलु होदि सब्भूदो ॥१८॥

जो जीव शुभ अशुभसे, परिणमता वह हि शुभ अशुभ होता ।
शुद्ध परिणाम परिणत, हो तब वह शुद्ध ही होता ॥९॥
वस्तु न पर्याय रहित, पर्याय रहित वस्तु भी नहीं होता ।
द्रव्य गुण पर्यायस्थ, वस्तु हि आस्तित्व निर्वृ त है ॥१०॥
धर्म परिणत स्वभावी, है यदि शुद्धोपयोगयुत आत्मा ।
निर्वाणानन्द लहे, शुभोपयोगी लहें सुरसुख ॥११॥
अशुभोदय से आत्मा, कुनर व तिर्यञ्च नारकी होकर ।
पीड़ित भ्रमता, अशुभपयोग, अत्यन्त हेय अतः ॥१२॥
अतिशय आत्मसमुद्भव, अतीत विषयी अनंत व अनुपम ।
अव्यय आनन्द मिले, सुसिद्ध शुद्धोपयुक्तों को ॥१३॥
पद अर्थ सूत्र ज्ञाता, संयम तपयुक्त रागसे विरहित ।
सुख दुखमें सम हि श्रमण होता शुद्धोपयोगी है ॥१४॥
उपयोग शुद्ध आत्मा स्वयं मोहावृति विघ्न व्यपगत हो ।
ज्ञेय भूत सकलार्थों के, पूरे पार को पाता ॥१५॥
शुद्ध चिद्भावदर्शी, सर्वज्ञ समस्तलोक पति पूजित ।
हुआ स्वयं यह आत्मा, अतः स्वयंभू कहा इसको ॥१६॥
फिर इसका जो सम्भव, अव्यय है व्यय भि संभवसे रहित ।
फिर भी स्थिति व्यय संभव, इनका समवाय रहता है ॥१७॥
संभव व्यय दोनों भी, रहते हैं सकल अर्थ सार्थोंमें ।
ध्रौव्य सामान्यसे है, होते सद्भूत अर्थ तब ही ॥१८॥

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अहियतेजो ।
जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि ॥१९॥

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं ।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं जम्हा दु तं णेयं ॥२०॥

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया ।
सो णेव ते विजाणदि ओग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं ॥२१॥

णत्थि परोक्खं किंचिवि समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स ।
अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स ॥२२॥

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं ।
णेयं लोगालोगं तम्हा णाणं तु सव्वगयं ॥२३॥

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा ।
हीणो वा अहियो वा णाणादो हवदि धुवमेव ॥२४॥

हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेदणं ण जाणादि ।
अहियो वा णाणादो विणा णाणेण कहं णादि ॥२५॥

सव्वगदो जिणवसहो सव्वेवि य तग्गया जगदि अट्ठा ।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा ॥२६॥

णाणं अप्पत्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं ।
तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं व अण्णं वा ॥२७॥

णाणी णाणसहावो अत्था णेयप्पगा हि णाणिस्स ।
रूवाणि व चक्खूणं णेवण्णोण्णेसु वट्टंति ॥२८॥

प्रक्षीणघातिकर्मा, अनन्तवरवीर्य अधिक तेजस्वी ।
हुआ अतीन्द्रिय इससे, हो ज्ञानानन्द परिणमता ॥१६॥
केवली प्रभु अतीन्द्रिय, विगत विकल्प सकलज्ञ है इससे ।
शारीरिक सुख अथवा, दुख भी नहिं केवली प्रभुके ॥२०॥
ज्ञान परिणत प्रभुके, सब प्रत्यक्ष है द्रव्य पर्यायें ।
सो वे अव ग्रहादिक-पूर्वक क्रमसे भि जानते नहिं ॥२१॥
कुछ भी परोक्ष नहिं है, समन्त सर्वाक्ष गुण समृद्धोंके ।
ज्ञायक अतीन्द्रियोंके, स्वयं सहज ज्ञानशीलोंके ॥२२॥
आत्मा ज्ञान प्रमाण हि, ज्ञेय प्रमाण है ज्ञान बतलाया ।
लोकालोक ज्ञेय है, ज्ञान लखो सर्वगत इससे ॥२३॥
ज्ञान प्रमाण हि आत्मा, जो नहिं माने सो उसके यह आत्मा ।
अधिक ज्ञानसे होगा, या होगा हीन क्या मानों ॥२४॥
यदि हीन कहोगे तो, ज्ञान अचेतन हुआ न कुछ जाने ।
यदि अधिक कहोगे तो, ज्ञान बिना जानना कैसे ॥२५॥
सर्वगत जिनवृषभ है क्योंकि सकल अर्थ ज्ञानमें गत है ।
जिन ज्ञानमय है अतः वे सर्वविषयक कहे उनके ॥२६॥
कहा ज्ञानको आत्मा क्योंकि न है ज्ञान बिना आत्माके ।
इससे ज्ञान है आत्मा, आत्मा ज्ञान व अन्य भी है ॥२७॥
ज्ञानी ज्ञान स्वभावी ज्ञानी के अर्थ ज्ञेय रूप रहें ।
चक्षु में रूपकी ज्यौं, वे नहिं अन्योन्यमें रहते ॥२८॥

ण पविट्ठो णाविट्ठो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू ।
जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं ॥२९॥

रदणमिह इंदणीलं दुद्धज्झसियं जहा सभासाए ।
अभिभूय तंपि दुद्धं वट्टदि तह णाणमत्थेसु ॥३०॥

जदि ते ण संति अत्था णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं ।
सव्वगयं वा णाणं कहं ण णाणट्ठिया अत्था ॥३१॥

गेण्हदि णेव ण मुंचदि ण परं परिणमदि केवली भगवं ।
पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं ॥३२॥

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण ।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा ॥३३॥

सुत्तं जिणोवदिट्ठं पोग्गलदव्व पगेहिं वयणेहिं ।
तज्जाणणा हि णाणं सुत्तस्स य जाणणा भणिया ॥३४॥

जो जाणदि सो णाणं ण हवदि णाणेण जाणगो आदा ।
णाणं परिणमदि सयं अट्ठा णाणट्ठिया सव्वे ॥३५॥

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिधा समक्खादं ।
दव्वंति पुणो आदा परं च परिणामसंबद्धं ॥३६॥

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं ।
वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं ॥३७॥

जेणेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया ।
ते होंति असब्भूया पज्जाया णाणपच्चक्खा ॥३८॥

नहिं मग्न अमग्न नहीं, ज्ञानी ज्ञेयोंमें रूप चक्षुवत् ।
इन्द्रियातीत वह तो, जाने देखे समस्तोंको ॥२६॥

ज्यों नील रत्न पयमें, बसा स्वकान्तिसे व्यापकर पयको ।
वर्तता ज्ञान त्यों ही, अर्थोंमें व्यापकर रहता ॥३०॥

यदि वे अर्थ नहीं हैं, ज्ञानमें तो न ज्ञान सर्वगत हो ।
ज्ञान सर्वगत ही है, फिर न क्यों अर्थ ज्ञानमें स्थित ॥३१॥

नहिं गहता नहिं तजता, परिणमता न परको केवलीप्रभु ।
वह तो सर्व तरफसे, जानें देखे अशेषों को ॥३२॥

जो विजानता श्रुतसे, आत्माको है स्वभावसे ज्ञायक ।
लोक प्रदीपक ऋषिगण, उसको श्रुतकेवली कहते ॥३३॥

पुद्गलमय वचनों से जो जिन उपदेश उसे सूत्र कहा ।
ज्ञान है उसकी ज्ञप्ति, उसको ही सूत्रज्ञान कहा ॥३४॥

ज्ञान वह जानता जो, ज्ञानसे नहिं ज्ञायक बना आत्मा ।
स्वयं ज्ञानमय होता, वह है सवार्थ ज्ञानमें स्थित ॥३५॥

ज्ञान तो जीव है अरु, ज्ञेय द्रव्य है त्रिकालवर्ती सब ।
द्रव्य पदार्थ व आत्मा, ज्ञान ज्ञेय परिणाम संयुत ॥३६॥

उन द्रव्य जातियों के, वर्तमान अवर्तमान पर्यायें ।
सर्व वर्तमान की ज्यों, विशेष से ज्ञानमें वर्ते ॥३७॥

जो उत्पन्न हुई नहिं, जो होकर नष्ट हो गईं वे सब ।
अद्भुत पर्यायें ज्ञान, मांहि प्रत्यक्ष हैं ये ॥३८॥

जदि पच्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स ।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वंति हि के परूविंति ॥३६॥

अत्थं अक्खणिवदिदं ईहापुव्वेहिं जे विजाणंति ।
तेसिं परोक्खभूदं णादुमसक्कंति पण्णत्तं ॥४०॥

अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं ।
पलयं गदं च जाणदि तं णाणमदिंदियं भणियं ॥४१॥

परिणमदि णेयमट्ठं णादा जदि णेव खाइगं तस्स ।
णाणंत्ति तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता ॥४२॥

उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया ।
तेसु हि मुहिदो रत्ते दुट्ठो वा बंधमणुहवदि ॥४३॥

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं ।
अरहंताणं काले मायाचारोव्व इच्छीणं ॥४४॥

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदयिगा ।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइगत्ति मदा ॥४५॥

जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण ।
संसारोवि ण विज्जदि सव्वेसिं जीवकायाणं ॥४६॥

जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं ।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइयं भणियं ॥४७॥

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तेकालिगे तिहुवणत्थे ।
णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वमेगं वा ॥४८॥

यदि अजात प्रलयित पर्यायें, प्रत्यक्ष ज्ञानमें नहिं हों।
तो 'वह ज्ञान दिव्य है', कौन प्ररूपण करे ऐसा ॥३९॥
इन्द्रिय नियतित अर्थों, को ईहा पूर्व जानते हैं जो।
उनके जानन में नहिं, परोक्ष के अर्थ आ सकते ॥४०॥
कायिक अकाय मूर्तिक, अमूर्त सत् भावि नष्ट पर्यायें।
सबको हि जानता जो, वह ज्ञान अतीन्द्रिय कहा है ॥४१॥
यदि ज्ञेय पदार्थोंमें, परिणाम जावे कोइ जो ज्ञाता।
उसका ज्ञान न क्षायिक, कर्मक्षयक जिन कहें ऐसा ॥४२॥
ससारी जीवोंके, उदयागत कर्म हैं कहे जिनने।
उनमें मोही रागी, द्वेषी ही बन्ध अनुभवते ॥४३॥
सामयिक थान आसन, विचरण धर्मोपदेश जिनवरका।
स्वाभाविक सब होता, स्त्रीकी सामयिक मायावत् ॥४४॥
अर्हन्त पुण्यफल हैं, यद्यपि उनकी क्रिया हि औदयिक।
तो भी मोहादि रहित, अतः उसे क्षायिकी मानी ॥४५॥
यदि संसारी आत्मा, शुभ अशुभ न हो स्वकीय परिणतिसे।
तो संसार भी नहीं, होगा सब जीव वृन्दों के ॥४६॥
जो भूत भावि साम्प्रत, विषय विचित्र सर्व अर्थको जानें।
युगपत् सर्यंत से, उसको क्षायिक ज्ञान बतलाया ॥४७॥
जो जानता न युगपत्, त्रैकालिक त्रिभुवनस्थ अर्थोंको।
वह जान नहीं सकता, एक सपर्यय द्रव्य को भी ॥४८॥

दव्वं अणंतपज्जयमेक्कमणंताणि दव्वजादाणि ।
ण विजाणदि जदि जुगवं कध सो सव्वाणि जाणादि ॥४९॥

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अत्थे पडुच्च णाणिस्स ।
तं णेव हवदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं ॥५०॥

तेकालणिच्चविसमं सकलं सव्वत्थ संभवं चित्तं ।
जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं ॥५१॥

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अत्थेसु ।
जाणण्णवि ते आदा अबन्धगो तेण पण्णत्तो ॥५२॥

अत्थि अमुत्तं मुत्तं अदिंदियं इंदियं च अत्थेसु ।
णाणं च तधा सोक्खं जं तेसु परं च तं णेयं ॥५३॥

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं ।
सकलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं ॥५४॥

जीवो सयं अमुत्तो मुत्तिगदो तेण मुत्तिणा मुत्तं ।
ओगिण्हित्ता जोग्गं जाणदि वा तण्ण जाणादि ॥५५॥

फासो रसो य गंधो वण्णो सद्दो य पुग्गला होंति ।
अक्खाणं ते अक्खा जुगवं ते णेव गेण्हंति ॥५६॥

परदव्वं ते अक्खा णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिदा ।
उवलद्धं तेहि कहं पच्चक्खं अप्पणो होदि ॥५७॥

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खत्ति भणिदमत्थेसु ।
जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं ॥५८॥

अनन्तपर्याय सहित, एक स्वयं द्रव्यको न जाने जो ।
सब अनन्त द्रव्यों को, वह युगपत् जान नहिं सकता ॥४९॥

अर्थोंका आश्रय कर, क्रमसे यदि ज्ञान जीवका जाने ।
तो वह ज्ञान न होगा नित्य न सर्वगत नहिं क्षायिक ॥५०॥

त्रैकाल्य नित्य व विषम, त्रिलोकके विविध सर्व अर्थोंको ।
ज्ञान प्रभूका जाने, युगपत् यह ज्ञान की महिमा ॥५१॥

नहिं परिणमें न गहते, उपजे आत्मा व न उन अर्थोंमें ।
उनको विजानता भी, यह इस ही से अबन्धक है ॥५२॥

अर्थोंका ज्ञान व सुख, मूर्त अमूर्त इन्द्रियज अतीन्द्रिय ।
हो जो इनमें उत्तम, वही उपादेय है जानो ॥५३॥

ज्ञान प्रत्यक्ष वह जो, द्रष्टा का ज्ञान जानता होवे ।
मूर्त अमूर्त अतीन्द्रिय, प्रच्छन्न स्व पर समस्तों को ॥५४॥

आत्मा स्वयं अमूर्तिक, मूर्तिग मूर्तिसे योग्य मूर्तों को ।
अवग्रह हि जाने जो, व न जाने ज्ञान वह क्या है ॥५५॥

स्पर्श रस गंध वर्ण रूप, शब्द पुद्गल विषय है अक्षोंसे ।
उनको भी ये इन्द्रिय, युगपत् नहिं ग्रहण कर सकती ॥५६॥

इन्द्रियों परद्रव्य कहीं, वे नहिं होते स्वभाव आत्माके ।
उनसे जो जाना वह, आत्मा प्रत्यक्ष कैसे हो ॥५७॥

जो परसे अर्थों का, ज्ञान हुआ वह परोक्ष बतलाया ।
जो केवल आत्मा से, जाने प्रत्यक्ष कहलाता ॥५८॥

जादं सयं समत्तं णाणमणंतत्थवित्थिदं विमलं।
रहिदं तु ओग्गाहादिहिं सुहंत्ति एयंतियं भणिदं ॥५६॥
जं केवलत्ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा ॥६०॥
णाणं अत्थंतगदं लोगालोगेसु वित्थडा दिट्ठी।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं ॥६१॥
ण हि सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमंति विगदघादीणं।
सुणिऊण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति ॥६२॥
मणुआऽसुरामरिंदा अहिद्दुआ इंदिएहिं सहजेहिं।
असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु ॥६३॥
जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं ॥६४॥
पप्पा इट्ठे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो ॥६५॥
एगतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणइ सग्गे वा।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा ॥६६॥
तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति ॥६७॥
सयमेव जधादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि।
सिद्धोवि तहा णाणं सुहं च लोगे तहा देवो ॥६८॥

स्वयं जात व समंतज, अनन्त अर्थोंमें विस्तृत निर्मल।
अवग्रहादिसे रहित, ज्ञान हि को सुख कहा वास्तव ॥५६॥

जो केवल ज्ञान व सुख है, वह परिणाम रूप है तो भी।
खेद न रंच वहाँ है, क्योंकि घाति कर्म नष्ट हुए ॥६०॥

ज्ञान अर्थान्तर्गत है, दृष्टि है लोकालोकमें विस्तृत।
नष्ट अनिष्ट लब्ध सर्वेष्ट, अतः कैवल्य सुखमय ॥६१॥

विगत घाति जिनका सुख, सुखोंमें उत्कृष्ट को न सरधाने।
अमक सब सुनकर भी, भव्य हि प्रभु सौख्य सरधाने ॥६२॥

नृसुरासुरेन्द्र पीड़ित, प्राकृतिक इन्द्रियोंके द्वारा ही।
उस दुख को न सहन कर, रमते हैं रम्य विषयों में ॥६३॥

जिनकी विषयोंमें रति, उनके तो क्लेश प्राकृतिक जानो।
यदि हो न दुख उन्हें तो, विषयार्थ प्रवृत्ति नहिं होती ॥६४॥

स्पर्शादि से समाश्रित, इष्ट विषय या स्वभावसे आत्मा।
परिणममान स्वयं सुख, होता नहिं देह सुखहेतुक ॥६५॥

स्वर्ग में भी नियमसे, देही के देहसे नहीं सुख है।
विषयवश से स्वयं यह, सुख वा दुख रूप होता है ॥६६॥

जिसकी दृष्टि तिमिर हर, उसको दीपसे कार्य ज्यों नहिं कुछ।
त्यों आत्मा सौख्यमयी, वहां विषय कार्य क्या करते ॥६७॥

स्वयमेव सूर्य नभमें, तेजस्वी उष्ण देव है जैसे।
स्वयमेव सिद्ध सुखमय, ज्ञान तथा देव है तैसे ॥६८॥

देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु ।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा ॥६६॥

जुत्तो सुहेण आदा तिरियो वा माणुसो व देवो वा ।
भूदो तावदि कालं सुहं इंदियं विविहं ॥७०॥

सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणंपि सिद्धमुवदेसे ।
ते देहवेदणट्ठा रमंति विसएसु रम्मेसु ॥७१॥

णरणारयतिरियसुरा भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं ।
किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं ॥७२॥

कुलिसाउहचक्कधरा सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं ।
देहादीणं विद्धिं करेंति सुहिदा इवाभिरदा ॥७३॥

जदि संति हि पुण्णाणि य परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि ।
जणयंति विसयतण्हं जीवाणं देवदंताणं ॥७४॥

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि ।
इच्छंति अणुहवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥७५॥

सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं ।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तधा ॥७६॥

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाणं ।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥७७॥

एवं विदिदत्थो जो दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा ।
उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुःक्खं ॥७८॥

देवगुरु-भक्तिमें नित दान सदाचार अनशनादिक में ।
जो प्रवृत्त आत्मा वह, है सरल शुभोपयोगात्मक ॥६९॥
शुभ युक्त जीव होकर, तिर्यञ्च मनुष्य देवगति वाला ।
उतने काल विविध, इन्द्रिय सुखको प्राप्त करता है ॥७०॥
स्वाभाविक सुख देवों, के भि नहीं पूर्ण सिद्ध हैं वे तो ।
देहेन्द्रिय पीड़ावश, रम्य विषयों में रमते हैं ॥७१॥
नर नारक तिर्यक् सुर, यदि देहोद्भव हि क्लेश अनुभवते ।
जीव के शुभाशुभ उपयोग में विशेषता क्या है ॥७२॥
वज्रधर चक्रधर भी, शुभोपयोग फल रूप भोगों से ।
सुख कल्पी भोग निरत, देहादिक पुष्ट करते हैं ॥७३॥
शुभ उपयोग जनित जो, नानाविध पुण्य विद्यमान हुए ।
करते हि विषय तृष्णा, देवों तक के भि जीवों के ॥७४॥
फिर तृष्णावी होकर, दुखित तृष्णासे विषय सौख्योंको ।
चाहे और दुखों से, तप्त हुए भोगते उनको ॥७५॥
सपर सबाध विनाशी, बन्ध कारणीभूत वा विषम जो ।
सुख इन्द्रिय से पाया, वह सुख क्या दुःख ही सारा ॥७६॥
पुण्य पाप में अन्तर, न कुछ भि ऐसा नहीं मानता जो ।
मोह संछन्न होकर, अपार संसार में भ्रमता ॥७७॥
यों सत्य जानकर जो, द्रव्योंमें राग द्वेष नहिं करता ।
शुद्धोपयुक्त हो वह, देहोद्भव दुःख मिटाता है ॥७८॥

चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि ।
ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ॥७९॥

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं ।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥८१॥

सव्वेवि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा ।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं ॥८२॥

दव्वादिएसु मूढो भावो जीवस्स हवदि मोहोत्ति ।
खुब्भदि तेणोच्छण्णो पप्पा रागं व दोसं वा ॥८३॥

मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीव स ।
जायदि विविहो बन्धो तम्हा ते संखवइदव्वा ॥८४॥

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु ।
विसएसु अप्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि ॥८५॥

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा ।
खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥८६॥

दव्वाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया ।
तेसु गुणपज्जयाणं अप्पा दव्वत्ति उवदेसो ॥८७॥

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलद्ध जोण्हमुवदेसं ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥८८॥

पापारंभ छोड़कर, शुभ चारित्रमें उद्यमी भी हो।
यदि न तजे मोहादिक, तो न लहें शुद्ध आत्माको ॥७९॥

जो जिनवर को जाने, द्रव्यत्व गुणत्व पर्ययपने से।
वह जाने आत्मा को, उसके भ्रम नष्ट हो जाता ॥८०॥

निर्मोह जीव सम्यक्, निज आतमतत्त्व को जानकर भी।
यदि राग द्वेष तजता तो, पाता शुद्ध आत्मा को ॥८१॥

सब ही अरहंत प्रभू, इस विधि कर्म अंशक्षत करके।
उपदेश वही करके, मुक्त हुए हैं नमोस्तु उन्हें ॥८२॥

द्रव्यादिकमें आत्मा का, मूढ हि भाव मोह कहलाता।
मोहावृत जीव करे, चोभ राग द्वेष को पाकर ॥८३॥

मोह राग द्वेष हि से, परिणत जीवों के बन्ध हो जाता।
इससे विभाव रिपु का, मुमुक्षु निर्मूल नाश करें ॥८४॥

अर्थ विरुद्ध प्रवृत्ति, करुणाभाव तिर्यञ्च मनुजों में।
विषयों का हो संगम, मोहभावके ये हि लिङ्ग कहे ॥८५॥

जिन शास्त्रों से अर्थों के, प्रत्यक्षादि रूप ज्ञाता के।
मोह नशे इस कारण, शास्त्र पठन नित्य आवश्यक ॥८६॥

द्रव्य गुण तथा उनकी पर्यायें अर्थ नामसे संज्ञित।
उन गुण पर्यायों की आत्मा को द्रव्य बतलाया ॥८७॥

जैन उपदेश पाकर, हनता जो मोह राग द्वेषों को।
वह अल्प कालमें ही, सब दुखसे मुक्ति पाता है ॥८८॥

णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तणाहि संबद्धं ।
जाणदि जदि णिच्छयदो जो जो सो मोहक्खयं कुणदि ॥८६॥
तम्हा जिणमग्गादो गुणेहिं आदं परं च दव्वेसु ।
अभिगच्छदु णिम्मोहं इच्छदि जदि अप्पणो अप्पा ॥६०॥
सत्तासंबद्धेदे सविसेसे जो हि णेव सामण्णे ।
सद्दहदि ण सो समणो तत्तो धम्मो ण संभवदि ॥६१॥
जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्मि ।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मोत्ति विसेसिदो समणो ॥६२॥

इति ज्ञानाधिकार सम्पूर्णम्

—:० * ०.—

अथ ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनम्

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि ।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया ॥६३॥
जे पज्जयेसु णिरदा जीवा परसमयिगत्ति णिद्दिट्ठा ।
आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा ॥६४॥
अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं ।
गुणवं च सपज्जायं जंतं दव्वत्ति वुच्चंति ॥६५॥
सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं ।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं ॥६६॥
इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं ।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं ॥६७॥

ज्ञानात्मक आत्माको, परकीय गुणमय पर-पदार्थों का ।
जो निश्चयसे जाने, वह करता मोहका प्रक्षय ॥८९॥
इससे जिन शासनसे, नियत गुणोंसे स्वपर जान करके ।
द्रव्यों में निर्मोही, होओ यदि आत्महित चाहो ॥९०॥
सत्ता सम्बद्ध सभी, सविशेष भि जो न द्रव्य सरधानें ।
वह तो श्रमण नहीं है, नहिं उससे धर्मका संभव ॥९१॥
जो निहतमोहद्रष्टी, आगमज्ञान व विरागचर्या में ।
उन्नत महान् आत्मा, वह श्रमण धर्ममय माना ॥९२॥

ज्ञानाधिकार सम्पूर्ण

—:० ❀ ०:—

ज्ञेयाधिकारः (ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन)

अर्थ द्रव्यमय होता, द्रव्य गुणात्मक उनसे पर्यायें ।
होती उन पर्यायों के, मोही पर-समय जानो ॥९३॥
जो पर्यायनिरत है, उन जीवों को पर समय बताया ।
जो आत्म-स्वभावस्थित, है उनको पर-समय जानो ॥९४॥
न स्वभाव छूटने से, उत्पाद व्यय ध्रुवत्व समवेत ।
सगुण व सपर्यय जो, उसको बुध द्रव्य कहते हैं ॥९५॥
निज गुण व विविध पर्ययसे अतिरन है द्रव्यका स्वभाव ।
वह सर्व काल व्यापै, संभव व्यय ध्रौव्य भावों से ॥९६॥
यहं विविध लक्षणों का, लक्षण सामान्य सत्त्व व्यापक है ।
धर्म उपदेश कर्त्ता जिनवर प्रभुने कहा है यों ॥९७॥

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादो ।
सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ ॥९८॥

सदवट्ठियं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो ।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो ॥९९॥

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो ।
उप्पादोवि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥१००॥

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया ।
दव्वं हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥१०१॥

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं ।
एकम्मि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं ॥१०२॥

पाडुब्भवदि य अण्णो पज्जाओ पज्जाओ वयदि अण्णो ।
दव्वस्स तंपि दव्वं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं ॥१०३॥

परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदविसिट्ठं ।
तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेवत्ति ॥१०४॥

ण हवदि जदि सद्दव्वं असद्धुवं हवदि तं कहं दव्वं ।
हवदि पुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥१०५॥

पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स ।
अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं भवदि कधमेगं ॥१०६॥

सद्दव्वं सच्च गुणो सच्चेव य पज्जओत्ति वित्थारो ।
जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतब्भावो ॥१०७॥

स्वतः सिद्ध सत् सब द्रव्य हैं बताया जिनेशने वास्तव ।
आगम सिद्ध भि ऐसा, माने जो न वह परसमय है ॥९८॥

स्वभावस्थ होनेसे, सत् द्रव्य कहा व द्रव्य परिणाम भि ।
है अर्थका स्वभाव हि, थिति संभव नाश समवायी ॥९९॥

व्यय विहीन नहिं संभव, व्यय भी संभव विहीन नहिं होता ।
संभव व्यय नहीं होते, ध्रौव्य तथा अर्थतत्त्व बिना ॥१००॥

ध्रौव्य उत्पाद व्यय हैं, पर्यायों में वे भि पर्यायें ।
है नियत द्रव्यमें इससे, एक हि द्रव्य ही वे सब हैं ॥१०१॥

संभव व्यय थिति नामक, अर्थोंसे समवेत द्रव्य रहता ।
सो एक ही समयमें, तत्त्रितयात्मक हि द्रव्य हुआ ॥१०२॥

द्रव्यकी अन्य पर्यय उपजी वा पर्याय इतर विनशी ।
द्रव्य वही का वह है, वह न उत्पन्न नष्ट हुआ ॥१०३॥

द्रव्य स्वयं परिणमता, गुणसे गुणांतर तदपि सत् वह ही ।
इससे गुण पर्यायें सकल उसी द्रव्यरूप कहीं ॥१०४॥

यदि द्रव्य सत् नहीं है, फिर असत् हुआ हि द्रव्य कैसे हो ।
यदि भिन्न सत्त्व सत्ता, क्या अतः द्रव्य है स्वयंसत्ता ॥१०५॥

प्रविभक्त प्रदेशपने को बतलाया पृथक्त्व शासनमें ।
अतद्भाव हि अन्यत्व, तद्भवान न तो एक कैसे ॥१०६॥

द्रव्य सत् व गुण सत् है, सत् है पर्याय व्यक्त यह वर्णन ।
वह उसका भवन नहीं, यह तद्भाव है अतद्भाव ॥१०७॥

जं दव्वं तण्ण गुणो जोवि गुणो सो ण तच्चमत्थादो ।
एसो हि अतब्भावो णेव अभावोत्ति णिद्दिट्ठो ॥१०८॥

जो खलु दव्वसहावो परिणामो सो गुण सदविसिट्ठो ।
सदवट्ठियं सहावे दव्वत्ति जिणोवदेसोयं ॥१०९॥

णत्थि गुणोत्ति य कोई पज्जाओत्तीह वा विणा दव्वं ।
दव्वत्तं पुणभावो तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥११०॥

एवंविहं सहावे दव्वं दव्वत्थपज्जयत्थेहिं ।
सदसब्भावणिबद्धं पाडुब्भावं सदा लभदि ॥१११॥

जीवो भवं भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो ।
किं दव्वत्तं पजहदि ण जहं अण्णो कहं होदि ॥११२॥

मणुओ ण होदि देवो देवो वा माणुसो व सिद्धो वा ।
एवं अहोज्जमाणो अणण्णभावं कधं लहदि ॥११३॥

दव्वट्ठिएण सव्वं तं दव्वं पज्जयट्ठिएण पुणो ।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्कालं तम्मयत्तादो ॥११४॥

अत्थित्ति य णत्थित्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं ।
पज्जाएण दु केणवि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा ॥११५॥

एसोत्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता ।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो ॥११६॥

कम्मं णामसमक्खं सभावमध अप्पणो सहावेण ।
अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥११७॥

जो द्रव्य न वह गुण है, जो गुण है वह न तत्त्व निश्चयसे ।
अतद्भाव ऐसा है किन्तु सर्वथा अभाव नहीं ॥१०८॥

परिणाम द्रव्यका है स्वभाव, परिणाम उसी सतमें है ।
स्वभाव में सुस्थित सत, उस ही को द्रव्य बतलाया ॥१०९॥

द्रव्य बिना कोई गुण, या कोई पर्याय भी नहीं है ।
द्रव्यत्व सत्त्व उसका, अतः द्रव्य है स्वयं सत्ता ॥११०॥

द्रव्य निज भावमें है, वह द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयसे ।
सदसद्भावसे गुम्फित अपने द्रव्यत्वको पाता ॥१११॥

जीव द्रव्यत्वके वश नृसुरादिक हो व सिद्ध-पदमें हो ।
द्रव्यत्वको न तजता, तब फिर वह अन्य कैसे हो ॥११२॥

नर नहिं सुर सिद्धादिक, सुर नहिं नर सिद्ध आदि परिणतिमें ।
इक अन्यमय न होता, तब उनमें एकता कैसे ॥११३॥

वस्तु द्रव्यार्थ नयसे, अनन्य है अन्य पर्ययी नयसे ।
क्योंकि उन उन विशेषोंके क्षणमें द्रव्य तन्मय है ॥११४॥

द्रव्य कुछ दृष्टियोंसे, अस्ति नास्ति व अवक्तव्य होता ।
उभय तीन व-त्रयात्मक, यों सब मिल सप्तभंग हुए ॥११५॥

यों नहीं कि संसारी; जीवोंकी क्रिया प्राकृतिक न बने ।
क्रिया भवफल रहित, धन्य परम धर्म यों निष्फल ॥११६॥

नाम कर्म प्रकृतीसे; शुद्धात्मस्वभावको दबा करके ।
मनुज तिर्यञ्च नारक व देव पर्यायमय करता ॥११७॥

णरणारयतिरियसुरा जीवा खलु णामकम्मणिव्वत्ता ।
ण हि ते लद्धसहावा परिणममाणा सकम्माणि ॥११८॥

जायदि णेव ण णस्सदि खणभंगसमुब्भवे जणे कोई ।
जो हि भवो सो विलओ संभवविलयत्ति ते णाणा ॥११९॥

तम्हा दु णत्थि कोई सहावसमवट्ठिदोत्ति संसारे ।
संसारे पुण किरिया संसरमाणस्स दव्वस्स ॥१२०॥

आदा कम्ममलिमसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं ।
तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो ॥१२१॥

परिणामो सयमादा सा पुण किरियत्ति होदि जीवमया ।
किरिया कम्मत्ति मदा तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता ॥१२२॥

परिणमदि चेयणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा ।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मिवाकम्मणो भणिदा ॥१२३॥

णाणं अट्ठवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं ।
तमणेगविधं भणिदं फलत्ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥१२४॥

अप्पा परिणामप्पा परिणामो णाणकम्मफलभावी ।
तम्हा णाणं कम्मं फलं च आदा मुणेदव्वो ॥१२५॥

कत्ता करणं कम्मं फलं च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो ।
परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥१२६॥

दव्वं जीवमजीवं जीवो पुण चेदणोवओगमयो ।
पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि य अज्जीवं ॥१२७॥

नर-नारक तिर्यक् सुर, प्राणी हैं नाम कर्म से निर्वृत्त ।
इससे कर्म विपरिणत, आत्मा न स्वभावको पाता ॥११८॥

उपजे नहीं न विनशे, तथापि क्षण हि क्षण सर्गलय होते ।
जो भव वह लय अथवा, संभव लय अन्य अन्य हुए ॥११९॥

इस कारणसे कोइ संसार में न स्वभाव समवस्थित ।
परिणाम क्रिया संसरमाण द्रव्यका स्वरूप कहा ॥१२०॥

कर्ममलीमस आत्मा, कर्म-निबद्ध परिणाम पाता है ।
उससे कर्म सिलिसिते, इससे परिणाम कर्म हुआ ॥१२१॥

परिणाम स्वयं आत्मा, परिणाम जीवमयी क्रिया ही है ।
क्रिया कर्म है सो आत्मा, न द्रव्य कर्मका कर्ता ॥१२२॥

परिणमें चेतनामें, आत्मा अरु चेतना त्रिधा होती ।
ज्ञानमें कर्ममें वा कर्मफल में भि चेतना है ॥१२३॥

ज्ञान अर्थविभासन, कर्म हुआ जीव भावका होना ।
उसका फल है नाना, दुख तथा सुखादि रूपोंमें ॥१२४॥

आत्मा परिणामात्मक, परिणाम भि ज्ञान कर्मफल भावी ।
इससे ज्ञान कर्मफल, तीनों को ही आत्मा मानो ॥१२५॥

कर्ता करण कर्मफल चारों ही जीवको सुनिनिश्चत कर ।
परमें न परिणमें जो, वह पाता शुद्ध आत्मा को ॥१२६॥

द्रव्य है जीव व अजीव, जीव सदा चेतनीय योगमयी ।
पुद्गल द्रव्यादि, अचेतन द्रव्य अजीव कहलाते ॥१२७॥

पुग्गलजीवणिबद्धो धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो ।
वट्टदि आयासे जो लोगो सो सव्वकाले दु ॥१२८

उप्पादट्ठिदिभंगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स ।
परिणामा जायंते संघादादो व भेदादो ॥१२९

लिंगेहिं जेहिं दव्वं जीवमजीवं च हवदि विण्णादं ।
ते तब्भावविसिट्ठा मुत्तामुत्ता गुणा णेया ॥१३०॥

मुत्ता इंदियगेज्झा पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविधा ।
दव्वाणममुत्ताणं गुणा अमुत्ता मुणेदव्वा ॥१३१॥

वण्णरसगंधफासा विज्जंते पुग्गलस्स सुहुमादो ।
पुढवीपरियंतस्स य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो ॥१३२॥

आगासस्सवगाहो धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं ।
धम्मेदरदव्वस्स दु गुणो पुणो ठाणकारणदा ॥१३३॥

कालस्स वट्टणा से गुणोवओगोत्ति अप्पणो भणिदो ।
णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणाणं ॥१३४॥

जीवा पोग्गलकाया धम्माऽधम्मा पुणो य आगासं ।
देसेहिं असंखादा णत्थि पदेसत्ति कालस्स ॥१३५॥

लोगालोगेसु णभो धम्माधम्मेहिं आददो लोगो ।
सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा ॥१३६॥

जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं ।
अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो ॥१३७॥

जितने नभमें रहते, काल धर्म अधर्म जीव व पुद्गल ।
लोकाकाश है उतना, उससे पार अलोक कहा ॥१२८॥

जीव व पुद्गल द्रव्यों के, संभव विलय ध्रौव्य होते हैं ।
परिणाम भि होते हैं, संघात व भेदकी भि क्रिया ॥१२९॥

जिन चिह्नोंसे जाना, जाता जीव व अजीव द्रव्योंको ।
वे तद्भाव विशेषित, मूर्त अमूर्त गुण यहां जानो ॥१३०॥

मूर्त ग्राह्य इन्द्रियसे, वे हैं पुद्गल पदार्थ नाना विध ।
द्रव्य अमूर्तों के गुण, अमूर्त इन्द्रिय ग्राह्य नहीं ॥१३१॥

सूक्ष्म व बादर पुद्गलके, वर्ण रस गंध व स्पर्श होते ।
पृथ्व्यादिक सब हीं के, शब्द विविध पुद्गल दशा है ॥१३२॥

आकाश का अवगाह, धर्म द्रव्यका गमन हेतुपना ।
अधर्म द्रव्य का थानक, हेतुपना गुण जो इनके ॥१३३॥

कालका वर्तना गुण, उपयोग गुण कहा है आत्माका ।
जानो संक्षेप तथा, गुण उक्त अमूर्त द्रव्यों के ॥१३४॥

जीव व पुद्गल धर्म व अधर्म आकाश हैं बहुप्रदेशी ।
ये सकाय एकाधिक भी, प्रदेश कालके नहिं हैं ॥१३५॥

लोक अलोकमें गगन, लोकमें धर्म अधर्म सर्वत्र ।
काल लोकमें नाना, जीव पुद्गल भी नानाकृत ॥१३६॥

नभमें प्रदेश जैसे, प्रदेश त्यों हैं समस्त द्रव्यों के ।
परमाणु अप्रदेशी भी, प्रोद्भव से सकाय कहा ॥१३७॥

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स ।
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स ॥१३८॥

वदिवददो तं देसं तस्सम समओ तदो परो पुव्वो ।
जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी ॥१३९॥

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं ।
सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवकासं ॥१४०॥

एक्को व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य ।
दव्वाणं च पदेसा संति हि समयत्ति कालस्स ॥१४१॥

उप्पादो पद्धंसो विज्जदि जदि जस्स एकसमयम्मि ।
समयस्स सोवि समओ सभावसमवट्ठिदो हवदि ॥१४२॥

एकम्मि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा ।
समयस्स सव्वकालं एस हि कालाणुसब्भावो ॥१४३॥

जस्स ण संति पदेसा पदेसमेत्तं व तच्चदो णादुं ।
सुण्णं जाण तमत्थं अत्थंतरभूदमत्थीदो ॥१४४॥

सपसेदेहिं समग्गो लोगो अट्ठेहिं णिट्ठिदो णिच्चो ।
जो तं जाणदि जीवो पाणचदुक्काहि संबद्धो ॥१४५॥

इन्दियपाणो य तधा बलपाणो तह य आउपाणो य ।
आणप्पाणप्पाणो जीवाणं होंति पाणा ते ॥१४६॥

पाणेहिं चदुहि जीवदि जीवस्सदि जो हि जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण पोग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता ॥१४७॥

काल है अप्रदेशी, उसका पर्याय समय यों जानो।
जितने में अणु नभका, प्रदेश इक लांघ जाता है ॥१३८॥

उसके प्रदेश लंघने के, सम एक समय पर्याय कहा।
काल द्रव्य अर्थ हि है, समय समुत्पन्न प्रध्वंसी ॥१३९॥

जितना नभ अणु रोके, उतना नभका प्रदेश इक होता।
उस प्रदेशमें शक्ति, सब अणु अवगाहने की है ॥१४०॥

एक दो बहु असंखे, तथा अनंते प्रदेश द्रव्यों के।
होते हैं किन्तु समय-प्रचय हि कालका प्रचय है ॥१४१॥

संभव विनाश होता, यदि एक समयमें समयका तो वहं।
द्रव्य समय वृत्तिग है, सो स्वभाव समवस्थ है ही ॥१४२॥

एक समय में होते, संभव व्यय ध्रौव्य सर्व-द्रव्योंके।
कालाणु में भि ऐसा, स्वभाव है सर्वदा निश्चित ॥१४३॥

जिसका प्रदेश नहिं हो, वह शून्य हुआ पदार्थ कैसे हो।
काल प्रदेश मात्र है, वह वस्तु वृत्तिसे पृथक् है ॥१४४॥

सप्रदेश पदार्थों से, यह नित्य समग्र लोक निष्ठित है।
उसका ज्ञाता जीव हि, वह जगमें प्राण संयोगी ॥१४५॥

इन्द्रिय बल आयु तथा, श्वासोच्छ्वास प्राण चारों में।
संसारी जीवों के, होते हैं जीवसे जिनसे ॥१४६॥

जीवित थे जीवेंगे जीते हैं, भि जो चार प्राणों से।
वे जीव प्राण किन्तु, निर्वृत्त पौद्गलिक द्रव्यों से ॥१४७॥

जीवो पाणणिवद्धो वद्धो मोहादिएहिं कम्मेहिं ।
उवभुंजं कम्मफलं वज्झदि अण्णेहिं कम्मेहिं ॥१४८॥

पाणाबाधं जीवो मोहपदेसेहिं कुणदि जीवाणं ।
जदि सो हवदि हि वन्धो णाणावरणादिकम्मेहिं ॥१४९॥

आदा कम्ममलिमसो धारदि पाणे पुणो पुणो अण्णे ।
ण जहदि जाव ममत्तं देहपधाणेसु विसएसु ॥१५०॥

जो इन्दियादिविजई भवीय उवओगमप्पगं झादि ।
कम्मेहिं सो ण रंजदि किह तं पाणा अणुचरंति ॥१५१॥

अत्थित्तणिच्छिदस्स हि अत्थस्सत्थंतरम्मि संभूदो ।
अत्थो पज्जायो सो संठाणादिप्पभेदेहिं ॥१५२॥

णरणारयतिरियसुरा संठाणादीहि अण्णहा जादा ।
पज्जाया जीवाणं उदयादु हि णामकम्मस्स ॥१५३॥

तं सब्भावणिवद्धं दव्वसहावं तिहा समक्खादं ।
जाणदि जो सवियप्पं ण मुहदि सो अण्णदवियम्हि ॥१५४॥

अप्पा उवओगप्पा उवओगो णाणदंसणं भणिदो ।
सो हि सुहो असुहो वा उवओगो अप्पणो हवदि ॥१५५॥

उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचयं जादि ।
असुहो वा तध पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि ॥१५६॥

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तधेव अणगारे ।
जीवे य साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥१५७॥

प्राण निबद्ध जीव यह, मोहादिक कर्मसे बन्धा होकर।
भोगता कर्मफल को, बन्ध जाता नव्य कर्मों से ॥१४८॥

मोह राग द्वेषों वश, जीव स्वपर प्राणघात करता यदि।
तो ज्ञानावरणादिक कर्मों से बन्ध हो जाता ॥१४९॥

कर्ममलीमस आत्मा पुनः पुनः अन्य प्राण धरता है।
देह विषय भोगोंमें, जब तक न ममत्व यह तजता ॥१५०॥

जो इन्द्रियादि विजयी हो, निज उपयोगमात्रको ध्याता।
नहिं कर्मरक्त होता, उसको फिर प्राण नहिं लगते ॥१५१॥

स्वास्तित्वसे सुनिश्चित, अर्थका अन्य अर्थमें बंधना।
है संस्थानादि सहित पर्याय अनेक द्रव्यात्मक ॥१५२॥

जीवों की पर्यायें, विषम हुई नाम कर्मके उदयसे।
नर नारक तिर्यक् सुर, नाना संस्थान के द्वारा ॥१५३॥

निज सद्भाव निबन्धक, त्रिधा द्रव्यका स्वभाव बतलाया।
सविशेष जानता जो, वह परमें मुग्ध नहिं होता ॥१५४॥

आत्मा उपयोगात्मक, उपयोग कहा ज्ञानदर्शनात्मक।
शुद्ध अशुद्ध द्विविध, वह होता उपयोग आत्मा का ॥१५५॥

उपयोग यदि अशुभ हो तो ही जीवके पापका संचय।
शुभ मे हि पुण्य संचय, नहिं बन्ध उभय अभावों में ॥१५६॥

परमेश्वर अर्हन्तों, सिद्धों व साधुवों की भक्तिमें।
जीव दयामें तत्पर, है शुभ उपयोग वह उसका ॥१५७॥

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो ।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥१५८॥

असुहोवओगरहिदो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्मि ।
होज्जं मज्झत्थोऽहं णाणप्पगमप्पगं झाए ॥१५९॥

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण ण कारयिदा अणुमत्ता णेव कत्तीणं ॥१६०॥

देहो य मणो वाणी पोग्गलदव्वप्पगत्ति णिद्दिट्ठा ।
पोग्गदव्वंपि पुणो पिंडो परमाणुदव्वाणं ॥१६१॥

णाहं पोग्गलमइओ ण ते मया पोग्गला कया पिंडं ।
तम्हा हि ण देहोऽहं कत्ता वा तस्स देहस्स ॥१६२॥

अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य सयमसद्दो जो ।
णिद्धो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुहवदि ॥१६३॥

एगुत्तरमेगादी अणुस्स णिद्धत्तणं व लुक्खत्तं ।
परिणामादो भणिदं जाव अणंतत्तमणुहवदि ॥१६४॥

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा ।
समदो दुराधिगा जदि बज्झन्ति हि आदिपरिहीणा ॥१६५॥

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बन्धमणुभवदि ।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो ॥१६६॥

दुपदेसादी खंधा सुहुमा वा बादरा ससंठाणा ।
पुढविजलतेउवाऊ सगपरिणामेहि जायंते ॥१६७॥

विषय कषाय विरञ्जित, चिन्तन सेवन श्रवण मलीमस हो ।
उग्र उन्मार्गगामी, उपयोग अशुभ जीवका है ॥१५८॥

अशुभोपयोग विरहित, शुभोपयोगी न हो परार्थोंमें ।
मैं मध्यस्थ रहू अरु ज्ञानात्मक आपको ध्याऊ ॥१५९॥

नहिं देह न मन नहिं वाणी, उनका कारण भि हू नहीं मैं यह ।
कर्ता न न कारयिता, कर्ताका हूं न अनुमोदक ॥१६०॥

देह तथा मन वाणी, ये पुद्गल द्रव्यमय हैं बताये ।
पुद्गल द्रव्य अचेतन, अणुवोंका पिण्ड यह सब है ॥१६१॥

मैं पुद्गलमय नहिं हू, न वे किये पिण्ड पौद्गलिक मैं न ।
इससे मैं देह नहीं, नहिं हू उस देह का कर्ता ॥१६२॥

परमाणु अप्रदेशी, एक प्रदेशी स्वयं अशब्द कहा ।
स्निग्धत्व रूक्षता वश, द्विप्रदेशादित्व अनुभवता ॥१६३॥

एकादी एकोत्तर, अणु के रूक्षत्व स्निग्धता होती ।
परिणति स्वभाववश से, जब तक भि अनन्तता होती ॥१६४॥

स्निग्ध हो रुक्ष हो अणु, के वे परिणाम सम वा विषम हों ।
समसे द्वयधिक हो यदि, बन्धते हैं किन्तु आदि रहित ॥१६५॥

स्निग्ध द्विगुण परमाणु, चतुर्गुणी स्निग्धसे बद्ध होता ।
त्रिगुण रूक्षसे बन्धता, पञ्चगुणी अन्य परमाणू ॥१६६॥

स्कन्ध द्विप्रदेशादिक, सूक्ष्म व बादर विचित्र संस्थानी ।
क्षिति सलिल अग्नि वायू, निज परिणामों से उपजते ॥१६७॥

ओगाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहि बादरेहिं य अप्पाउग्गेहिं जोग्गेहिं ॥१६८॥
कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।
गच्छंति कम्मभावं ण दु ते जीवेण परिणमिदा ॥१६९॥
ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो हि जीवस्स ।
संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा ॥१७०॥
ओरालिओ य देहो देहो वेउव्विओ य तेजयिओ ।
आहारय कम्मइओ पोग्गलदव्वप्पगा सव्वे ॥१७१॥
अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥१७२॥
मुत्तो रूवादिगुणो वज्झदि फासेहिं अण्णमण्णेहिं ।
तव्विवरीदो अप्पा बंधदि किध पोग्गलं कम्मं ॥१७३॥
रूवादिएहिं रहिदो पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि ।
दव्वाणि गुणे य जधा तध बन्धो तेण जाणीहि ॥१७४॥
उवओगमओ जीवो मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि ।
पप्पा विविधे विसये जो हि पुणो तेहिं संबंधो ॥१७५॥
भावेण जेण जीवो पेच्छदि जाणादि आगदं विसए ।
रज्जदि तेणेव पुणो वज्झदि कम्मत्ति उवएसो ॥१७६॥
फासेहिं पोग्गलाणं बंधो जीवस्स रागमादीहिं ।
अण्णोण्णं अवगाहो पोग्गलजीवप्पगो भणिदो ॥१७७॥

अवगाढ गाढ़ संभृत पुद्गल कायोंसे लोक है पूर्ण ।
सूक्ष्म वा बादरों में, प्राण-अयत्ना अप्राप्यों से ॥१६८॥

कर्मत्व योग्य पुद्गल, जीव परिणामका निमित्त पाकर ।
कर्म रूप परिणमते, जीव उन्हे नहिं परिणमाता ॥१६९॥

वे वे कर्म विपरिणत, पुद्गल काय हुए हि जीवके जो ।
देह विपरिणत करते, देहान्तर संक्रमण पाकर ॥१७०॥

औदारिक व वैक्रियक, आहारक तैजस तथा कार्माण ।
ये सब शरीर पांचों हैं, पुद्गल द्रव्य रूपी जड ॥१७१॥

अरस अरूप अगंधी, अव्यक्त अशब्द चेतना गुणमय ।
चिह्नाग्रहण बस्य स्वयं, असंस्थान जीवको जानो ॥१७२॥

रूपादिगुणी मूर्तिक, अन्योन्य स्पर्श हेतु बन्ध जाते ।
किन्तु अमूर्तिक आत्मा, पुद्गल विधि बांधता कैसे ॥१७३॥

रूपादि रहित आत्मा, रूपादिक द्रव्य व तद्भावों को ।
जानता देखता ज्यों, बंधन की विधि भि त्यों जानो ॥१७४॥

उपयोगमयी आत्माका, नाना विषय भावको पाकर ।
मोही रागी द्वेषी, होना ही भाव बन्धन है ॥१७५॥

जिस रागादि भाव से, आगत विषयोंको जानता लखता ।
उससे हि रक्त होता, बन्ध जाता कर्मसे फिर वह ॥१७६॥

स्पर्शसे पुद्गल का, बन्ध जीवका राग आदिकों से ।
अन्योन्यावगाहन, बन्ध है जीव पुद्गलात्मक ॥१७७॥

सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पोग्गला काया ।
पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति य जंति बज्झंति ॥१७८॥

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा ।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥१७९॥

परिणामादो बंधो परिणामो रागदोसमोहजुदो ।
असुहो मोहपदोसो सुहो व असुहो हवदि रागो ॥१८०॥

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु ।
परिणामोणण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये ॥१८१॥

भणिदा पुढविप्पमुहा जीव निकायाध थावरा य तसा ।
अण्णा ते जीवादो जीवोवि य तेहिंदो अण्णो ॥१८२॥

जो ण विजाणदि एवं परमप्पाणं सहावमासेज्ज ।
कीरदि अज्झवसाणं अहं ममेदत्ति मोहादो ॥१८३॥

कुव्वं सभावमदा हवदि हि कत्ता सगस्स भावस्स ।
पोग्गलदव्वमयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥१८४॥

गेण्हदि णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पोग्गलाणि कम्माणि ।
जीवो पोग्गलमज्झे वट्टण्णवि सव्वकालेसु ॥१८५॥

स इदाणिं कत्ता सं सगपरिणामस्स दव्वजादस्स ।
आदीयदे कदाई विमुच्चदे कम्मधूलीहिं ॥१८६॥

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो ।
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं ॥१८७॥

सप्रदेशी वह आत्मा, पुद्गल विधि काय उन प्रदेशोंमें ।
प्रविशते ठहरते वे, आते हैं और बन्धते वे ॥१७८॥
रागी कर्म ही बांधे, रागरहित छूटता बकर्मों से ।
संक्षिप्त बन्ध विवरण, जीवों का जान निश्चय से ॥१७९॥
बन्ध परिणाम से है, परिणाम भि राग द्वेष मोह सहित ।
मोह द्वेष अशुभ हि है, शुभ व अशुभ राग दो विध हैं ॥१८०॥
शुभ परिणाम पुण्य है, व अशुभ परिणाम पाप कहलाता ।
स्वगत अनन्यगत भाव, है दुखके नाश का कारण ॥१८१॥
क्षित्यादि जीवकायें त्रस थावर रूप जो कहे षड्विध ।
वे अन्य जीवसे हैं, जीव हैं अन्य उन छहों से ॥१८२॥
जो स्वभाव आश्रय कर, नहिं जाने स्वपर द्रव्यको ऐसे ।
व मोही 'यह मेरा' ऐसा भ्रम मोहसे करता ॥१८३॥
करता स्वभावको यह, आत्मा निज भावका हि कर्ता है ।
किन्तु नहीं कर्ता यह, पुद्गलमय सर्वभावों का ॥१८४॥
पुद्गलके मध्य सदा, रहता भी जीव नहीं करता है ।
गहता न नहीं तजता, पुद्गलमय कर्म भावों को ॥१८५॥
स्वयं शुद्ध भी आत्मा, साम्प्रत हो स्व परिणामका कर्ता ।
कर्म धूलि से होता, बद्ध कभी छूट भी जाता ॥१८६॥
परिणमता जब आत्मा, शुभ अशुभमें राग द्वेष सहित हो ।
तब ज्ञानावरणादिक भावोंसे कर्मराज बन्धता ॥१८७॥

सपदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरागदोसेहिं ।
कम्मरजेसिं सिलिट्ठो बन्धोत्ति परूविदो समये ॥१८८॥

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छएण णिद्दिट्ठो ।
अरहंतेहिं जदीणं ववहारो अण्णहा भणिदो ॥१८९॥

ण जहदि जो दु ममत्तिं अहं ममेदत्ति देहदविणेसु ।
सो सामण्णं चत्ता पडिवण्णो होइ उम्मग्गं ॥१९०॥

णाहं होमि परेसिं ण मे परे सन्ति णाणमहमेक्को ।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा ॥१९१॥

एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं ।
धुवमचलमणालंवं मण्णेऽहं अप्पगं सुद्धं ॥१९२॥

देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाऽध सत्तुमित्तजणा ।
जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा ॥१९३॥

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा ।
सागाराणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं ॥१९४॥

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे ।
होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥१९५॥

जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता ।
समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि धादा ॥१९६॥

णिहदघणघादिकम्मो पच्चक्खं सव्वभावतच्चण्हू ।
णेयंतगदो समणो झादि किमट्ठं असंदेहो ॥१९७॥

सप्रदेशी वह आत्मा, कषायवश मोह राग द्वेषों से ।
कर्मणिश्लिष्ट होता, इसके ही बन्ध बतलाया ॥१८८॥
यह सब बंध निरूपण, जिनने यतिको कहा विनिश्चयसे ।
व्यवहार का वचन इससे, अन्य प्रकार बतलाया ॥१८९॥
देह धनों में मेरा, यह है यों जो ममत्व नहिं तजता ।
सो श्रामण्य छोड़कर कुमार्ग को प्राप्त होता है ॥१९०॥
मैं परका नहिं हूं पर, मेरा नहिं ज्ञान भाव इक हूं मैं ।
यों निजको जो ध्याता, ध्यानमें शुद्ध वही ध्याता ॥१९१॥
यों ज्ञानात्मक दर्शन-भूत अतिन्द्रिय महार्थ अविनाशी ।
ध्रुव अचल निरालम्बी निजको यों शुद्ध भाता हूं ॥१९२॥
देह द्रविण सुख दुख या, शत्रुमित्र परिवार आदि सभी ।
जीव के ध्रुव न कुछ है, ध्रुव है उपयोगमय आत्मा ॥१९३॥
यों जान विशुद्धात्मा जो ध्याता परम आत्मशक्तीको ।
गेही या निर्गेही, मोह ग्रन्थि का क्षपण करता ॥१९४॥
जो विहत मोह ग्रन्थी, शत करके राग द्वेष मुनिपनमें ।
हो सुख दुख में सम है, वह अक्षय सौख्य पाता है ॥१९५॥
जो मोह नाश कर्ता विषय विरत मनका निरोध करके ।
स्थित निज स्वभावमें है, वह आतमतत्त्वका ध्याता ॥१९६॥
निहत घनघाती कर्मा, प्रत्यक्ष हि सब तत्वका ज्ञाता ।
श्रमण ज्ञेयान्तगत है, फिर किसके अर्थ ध्यान करें ॥१९७॥

सव्वावाधविजुत्तो समंतसव्वक्खसोक्खणाणड्ढो ।
भूदो अक्खातीदो भादि अणक्खो परं सोक्खं ॥१९८॥
एवं जिणा जिणिंदा सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा समणा ।
जादा णमोत्थु तेसिं तस्स य णिव्वाणमग्गस्स ॥१९९॥
तम्हा तध जाणित्ता अप्पाणं जाणगं सभावेण ।
परिवज्जामि ममत्तिं उवट्ठिदो णिम्ममत्तम्मि ॥२००॥

इति ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनम् सम्पूर्णम्

—:o ❁ o—

अथ चरणानुयोगसूचिका चूलिका

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे ।
पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं ॥२०१॥
आपिच्छ बंधुवग्गं विमोइदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं ।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारम् ॥२०२॥
समणं गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं ।
समणेहि तंपि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो ॥२०३॥
णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि ।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूवधरो ॥२०४॥
जधजादरूवजादं उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं ।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं ॥२०५॥
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोगजोगसुद्धीहिं ।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भवकारणं जोण्हं ॥२०६॥

सर्व-बाधा-विवर्जित समन्त सर्वांश ज्ञान सौख्यमयी ।
इन्द्रियातीत इन्द्रिय विगत परम सौख्य अनुभवते ॥१९८॥
यों जिनमार्गाश्रिय कर, श्रमण हुए जिन जिनेन्द्र सिद्ध प्रभू ।
उनको उनके शिवपथ को हों मेरा प्रणाम मुदा ॥१९९॥
इससे यथार्थ अभिगत कर आत्माको स्वभावसे ज्ञायक ।
तजता ममत्व को हू निर्ममता में वर्तता हू ॥२००॥

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन सम्पूर्ण

—:o ❀o:—

चारित्राधिकारः (चरणानुयोगसूचिका चूलिका)

यौं प्रणाम करि सिद्धों, जिनवरवृषभों पुनीतश्रमणों को ।
श्रामण्य प्राप्त कर लो, यदि चाहो दुःखसे मुक्ती ॥२०१॥
पूछकर बन्धुवों को, छूटकर गुरु कलत्र पुत्रों से ।
चारित्र ज्ञान दर्शन तप, वीर्यचार आश्रय करि ॥२०२॥
श्रमण गणी गुण संयुत, कुलरूप वयोविशिष्ट मुनिप्रियतर ।
सूरि को नमि अनुग्रह, याचे होता अनुग्रहीत भि ॥२०३॥
मै परका नहिं मेरे, पर कुछ भी नहीं यौ सुनिश्चित कर ।
यथा जात मुद्राधरि हो जाता है वह जितेन्द्रिय ॥२०४॥
यथा जात लिन मुद्रा, कचलुञ्चन विगतवसन भूषणता ।
हिंसा रंभ रहितता, अप्रति कर्मत्व मुनि-लक्षण ॥२०५॥
मूर्छारम्भरहितता, उपयोग योग विशुद्धि संयुतता ।
परापेक्ष विरहितता, अपुनर्भय हेतु मुनि-लक्षण ॥२०६॥

आदाय तंपि लिंगं गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता ।
सोच्चा सवदं किरियं उवट्ठिदो होदि सो समणो ॥२०७॥

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सकमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥२०८॥

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि ॥२०९॥

लिंगग्गहणं तेसिं गुरुत्ति पव्वज्जदायगो होदि ।
छेदेसूवट्ठगा सेसा णिज्जावया समणा ॥२१०॥

पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्मि ।
जायदि जदि तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया ॥२११॥

छेदुवजुत्तो समणो समणं ववहारिणं जिणमदम्मि ।
आसेज्जालोचित्ता उवदिट्ठं तेण कायव्वं ॥२१२॥

अधिवासे व विवासे छेदविहूणो भवीय सामण्णे ।
समणो विहरदु णिच्चं परिहरमाणो णिबंधाणि ॥२१३॥

चरदि णिवद्धो णिच्चं समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि ।
पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्णसामण्णो ॥२१४॥

भत्ते वा खवणे वा आवसधे वा पुणो विहारे वा ।
उवधिम्मि वा णिबद्धं णेच्छदि समणम्मि विकधम्मि ॥२१५॥

अपयत्ता वा चरिया सयणासणठाणचंकमादीसु ।
समणस्स सव्वकालं हिंसा सा संततत्ति मदा ॥२१६॥

उस मुद्राको लेकर गुरुसे गुरुको प्रणाम करि व्रतको ।
और क्रिया को सुनकर, धारण करके श्रमण होता ॥२०७॥
व्रत समिति अक्षरोधन, लोच आवश्य निर्वसन अस्नान ।
भूशयन अदंतधसन, स्थिति भोजन एकभुक्ति तथा ॥२०८॥
अट्ठावीस मूल गुण, श्रमणोंके ये जिनेशने भाषे ।
उनमें प्रमत्त साधू, छेदोपस्थापना करता ॥२०९॥
जिनसे दिक्षा ली है, वे गुरु कहलाते हैं दीक्षा गुरु ।
छेदोपस्थापक निर्यापक वे या इतर होते ॥२१०॥
यत्नकृत काय चेष्टा, में कुछ बहिरंग दोष हो जावे ।
तो आलोचन पूर्वक किरिया है दोषविनिवारक ॥२११॥
दोष उपयोग कृत हो, उसकी आलोचना भि होगी ही ।
जिनमत व्यवहार कथित, अन्य अनुष्ठान आवश्यक ॥२१२॥
निजवास गुरु वासमें, मुनित्वके दोषसे रहित होकर ।
प्रतिबंध दूर करके, नित्य हितङ्कर विहार करो ॥२१३॥
दर्शन ज्ञान स्वभावी, स्वद्रव्य प्रतिबद्ध शुद्ध वर्त कहो ।
मूल गुणमें प्रयत हो, विशुद्ध उपयोग धारक हो ॥२१४॥
आहारमें क्षपणमें, वास विहार व शरीर उपधीमें ।
मुनिगण व कथावों में, श्रमण नहीं दोष करता है ॥२१५॥
शयन अशन आसनमें, ठाण गमन आदिमें अयत वृत्ती ।
यदि हो मुनि के तो फिर, संतत हिंसा उसे जानो ॥२१६॥

मरदु व जिवदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्य णत्थि बन्धो हिंसामेत्तेण समिदीसु ॥२१७॥

अयदाचारो समणो छस्सुवि कायेसु वंधगोत्ति मदो ।
चरदि जदं जदि णिच्चं कमलं व जले णिरुवलेवो ॥२१८॥

हवदि व ण हवदि बन्धो मदे हि जीवेऽध कायचेट्ठम्मि ।
बन्धो धुवमुवधीदो इदि समणा छंडिया सव्वं ॥२१९॥

ण हि णिरवेक्खो चाओ ण हवदि भिक्खुस्स आसवविसुद्धी ।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिओ ॥२२०॥

किध तम्मि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स ।
तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि ॥२२१॥

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥२२२॥

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदिवियप्पं ॥२२३॥

किं किंचणत्ति तक्कं अपुणब्भवकामिणोध देहेवि ।
संगत्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा ॥२२४॥

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं ।
गुरुवयणंपि य विणओ सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं ॥२२५॥

इहलोग णिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि ।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ॥२२६॥

जीव मरे या जीवे, हिंसा निश्चित अयत्न वाले के ।
समिति सावधानी के, द्रव्य हिंसा से बंध नहीं होता ॥२१७॥
छह कायोंमें अयता-चारी मुनि नित्य है कहा बन्धक ।
यत्न सहित चर्या हो, तो जलमें पद्मवत् निर्मल ॥२१८॥
तन चेष्टाभाव बंधमें विधि बंधन हो न हो नियम नहीं है ।
उपधि से बन्ध निश्चित, इससे मुनि छोड़ देते सब ॥२१९॥
पर-त्याग विना अन्तः त्याग नहीं उसके भाव शुद्धि नहीं ।
अविशुद्ध चित्तमें फिर, कैसे हो कर्मका प्रक्षय ॥२२०॥
पर-द्रव्य-निरतके क्यों, नहीं हो आरंभ मूर्च्छा असंयम ।
सो असद्दृष्टि कैसे, आत्मा की सिद्धि कर सकता ॥२२१॥
दोष न जिसमें होवे, ग्रहण विसर्जन प्रवृत्ति करते में ।
श्रमण उसी विधि वर्तो, सुजान कर क्षेत्र काल विषय ॥२२२॥
साधू वन्धा साधन, अयतों के अनभिलषित उपधीको ।
मूर्च्छादि जनन विरहित, ही यति विकल्प को धारे ॥२२३॥
मोक्षैषी आत्मा को, देह भि उपेक्ष्य परिग्रह बताया ।
इतर संग तो हेय हि, यों अप्रति कर्मत्व जानो ॥२२४॥
जिन मार्ग में उपकरण, लिङ्ग यथा जात रूप बतलाया ।
गुरुवचन विनय सूत्रों, का अध्ययन भि कहा जिनने ॥२२५॥
इह लोक निरापेक्षी, व्यपगत पर-लोक की भि तृष्णासे ।
मुक्ताहार विहारी व कषाय रहित श्रमण होता ॥२२६॥

जस्स अणेसणमप्पा तंपि तओ तप्पडिच्छगा समणा ।
अण्णं भिक्खमणेसणमध ते समणा अणाहारा ॥२२७॥

केवलदेहो समणो देहेण ममेत्ति रहिदपरिकम्मो ।
आउत्तो तं तवसा अणिगूहिय अप्पणो सत्तिं ॥२२८॥

एक्कं खलु तं भत्तं अप्पडिपुण्णोदरं जधा लद्धं ।
चरणं भिक्खेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं ॥२२९॥

बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा ।
चरियं चरउ सजोग्गं मूलच्छेदं जधा ण हवदि ॥२३०॥

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमंउवधिं ।
जाणिता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥२३१॥

एयग्गगदो समणो एयग्गं णिच्छिदस्स अत्थेसु ।
णिच्छित्ती आगमदो आगचेट्ठा तदो जेट्ठा ॥२३२॥

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि ।
अविजाणंतो अत्थे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू ॥२३३॥

आगमचक्खू साहू इन्दियचक्खूणि सव्वभूदाणि ।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू ॥२३४॥

सव्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जयेहिं चित्तेहिं ।
जाणंति आगमेण हि पेच्छिता तेवि ते समणा ॥२३५॥

आगमपुव्वा दिट्ठिण भवदि जस्सेह संजमो तस्स ।
णत्थित्ति भहुण सुदित असंजदो हवदि किध समणो ॥२३६॥

अनशन स्वभाव आत्मा, मुनिवृन्द भी एषणा दोष रहित ।
शुद्ध लब्ध से भिक्षा-चारी मुनि अनाहारी हैं ॥२२७॥

मात्र देहस्थ मुनिवर तनमें भी ममत्व विन अपरिकर्मा ।
अपनी शक्ति प्रकट कर, तपमें उद्यत श्रमण होता ॥२२८॥

इक भुक्ति अपूर्णोदर, जैसा भि मिले दिनमें चर्यासे ।
अरसापेक्ष निरामिष, अमधु सुयुक्त आहार यही ॥२२९॥

बाल हो वृद्ध हो वा श्रान्त हो ग्लान हो भि कोइ श्रमण ।
योग्यचर्या करो जिसमें न मूल गुण विराधन हो ॥२३०॥

देशकाल सम क्षमता उपधी को जानकर श्रमण वर्ते ।
आहार विहारों में, तो वह है अल्प लेपी मुनि ॥२३१॥

ऐकाग्रयगत श्रमण है ऐकाग्रय् हि निश्चितार्थके होता ।
निश्चय आगमसे हो सो आगम ज्ञान है उत्तम ॥२३२॥

आगमहीन श्रमण तो यथार्थ निज अन्यको नहीं जाने ।
तत्त्व नहीं जानता मुनि, कैसे क्षत कर्म कर सकता ॥२३३॥

आगमचक्षू साधू, प्राणी तो सर्व अक्ष चक्षू हैं ।
देव अवधिचक्षू है, सिद्ध सकल रूपसे चक्षू ॥२३४॥

नाना गुण पर्यायों, सहित, अर्थ सब शास्त्र सिद्ध कहा ।
आगम से प्रेक्षण कर वे भि सब श्रमण जानते हैं ॥२३५॥

आगम पूर्वक दृष्टी, जिसके न हैं हो न संयम उसके ।
ऐसा है जिन भाषित, असंयमी हो श्रमण कैसे ॥२३६॥

ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि ण अत्थि अत्थेसु ।
सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्यादि ॥२३७॥

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं ।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेई उस्सासमेत्तेण ॥२३८॥

परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादियेसु जस्स पुणो ।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरोवि ॥२३९॥

पंचसमिदो तिगुत्तो पंचदियसंवुडो जिदकसाओ ।
दंसणणाणसमग्गो समणो सोसंजदो भणिदो ॥२४०॥

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो ।
समलोट्ठुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥२४१॥

दंसणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु ।
एयग्गगदोत्ति मदो सामण्णं तस्स परिपुण्णं ॥२४२॥

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदिवा दव्वमण्णमासेज्ज ।
जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं ॥२४३॥

अत्थेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुवयादि ।
समणो जदि सो णियदं खवेदि कम्माणि विविधाणि ॥२४४॥

समणा सुद्धुवजुत्ता-सुहोवजुत्ता य होंति समयम्मि ।
तेसुवि सुद्धुवउत्ता अणासवा सासवा सेसा ॥२४५॥

अरहंतादिसु भत्ती वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु ।
विज्जदि जदि सामण्णे सा सुहजुत्ता भवे चरिया ॥२४६॥

आगम-ज्ञान-मात्रसे, सिद्धि नहीं यदि न तत्वश्रद्धा हो ।
तत्त्व श्रद्धालु भी यदि, असंयमी हो न मोक्ष पाता है ।।२३७।।
अज्ञानी जितने विधि, क्रोड़ों भवमें विनष्ट कर देता ।
ज्ञानी उतने विधिको, त्रिगुप्त हो छिनकमें नशता ।।२३८।।
परमाणुमात्र मूर्च्छा, देह तथा इन्द्रियादिमें जिसके ।
रहती हो वह सर्वागमधर भी सिद्धि नहिं पाता ।।२३६।।
समिति गुप्तिसे संयुत, इन्द्रिय विजयी कषाय परिहारी ।
दर्शन ज्ञान सु-संयत, श्रमण कहा संयमी जिनने ।।२४०।।
शत्रु बन्धुओं में सम, सुख दुखमें सम प्रशंस निन्दा में ।
लोष्ठ व काञ्चनमें सम, जन्म-मरण सम श्रमण होता ।।२४१।।
चारित्र ज्ञान दर्शन, तीनों में एक साथ जो उत्थित ।
ऐकाग्रय्‌गत हुआ वह, उसके श्रामण्य है पूरा ।।२४२।।
यदि अज्ञानी हो मुनि, करि आश्रय पर विभिन्न द्रव्योंका ।
मोहे तूपे रूपे, तो बांधे विविध कर्मों को ।।२४३।।
मोहे न पदार्थोंमें, तूपे नहिं द्वेष नहिं करे जो यदि ।
वह श्रमण विविध कर्मोंका प्रक्षय नियत करता है ।।२४४।।
श्रमण शुद्धोपयोगी, शुभोपयोगी भि श्रमण दोनों हैं ।
किन्तु शुद्धोपयोगी, अनास्रवी शेष सास्रव हैं ।।२४५।।
सिद्ध जिनोंमें भक्ती, प्रवचन अभियुक्तमें सुवत्सलता ।
श्रामण्य ये प्रकट हो, वह है शुभयुक्त ही चर्या ।।२४६।।

वंदणणमंसणेहिं　　अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती ।
समणेसु समावणओ ण णिंदिया रायचरियम्मि ॥२४७॥

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं ।
चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य ॥२४८॥

उवकुणदि जोवि णिच्चं चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स ।
कायविराधणरहिदं सोवि सरागप्पधाणो से ॥२४९॥

जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो ।
ण हवदि हवदि अगारी धम्मो सो सावयाणं से ॥२५०॥

जोण्हाणं णिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं ।
अणुकंपयोवयारं कुव्वदु लेवो जदिवि अप्पो ॥२५१॥

रोगेण वा छुधाए तण्हणया वा समेण वा रूढं ।
देट्ठा समणं साधू पडिवज्जदु आदसत्तीए ॥२५२॥

वेज्जावच्चणिमित्तं　गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं ।
लोगिगजणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोवजुदा ॥२५३॥

एसा पसत्थभूता समणाणं वा पुणो घरत्थाणं ।
चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं ॥२५४॥

रागो पसत्थभूदो वत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं ।
णाणाभूमिगदाणि हि बीयाणिव सस्सकालम्मि ॥२५५॥

छदु मत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो ।
ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि ॥२५६॥

शुभ रञ्जित चर्यामें, वंदन उत्थान अनुगमन प्रणयन ।
प्रतिपत्ति श्रमापनयन, निन्दित नहिं राग चर्यामें ॥२४७॥

दर्शन ज्ञान देशना, शिष्य ग्रहण शिष्य आत्मपोषण भी ।
जिनपूजोपदेशना, आचार सराग श्रमणों का ॥२४८॥

चतुर्विध श्रमण संघों, का जो उपकार नित्य करता है ।
कार्यविराधन विरहित, वह साधु शुभोपयोगी है ॥२४९॥

जो संयम नहिं रखता, वैयावृत्यार्थ उद्यमी साधू ।
वह न श्रमण किन्तु गृही, यह तो है धर्म श्रावकका ॥२५०॥

अल्प लेप होते भी, श्रावक मुनि पद चरित्र युक्तोंका ।
शुद्ध लक्ष्य नहिं तजकर, हो निरपेक्ष उपकार करो ॥२५१॥

रोग क्षुधा तृष्णाके साथ हुए श्रमण कष्टको लख करि ।
आत्मशक्ति न छुपाकर, मुनि उसका प्रतीकार करे ॥२५२॥

ग्लान गुरु बाल व वृद्ध, श्रमणोंकी द्विविध सेवाके लिये ।
लौकिक जन संभाषण, निन्दित न शुभोपयोगी के ॥२५३॥

यह शुभचर्या श्रमणों गृहियों के गौण मुख्य रूप कही ।
सविवेक वृत्ति वाले, उत्तम शिव सौख्य पाते हैं ॥२५४॥

शुभ राग वस्तुकी कुछ विरुद्धतासे विरुद्ध भी फलता ।
ज्यों नाना पृथ्वीगत, बीज धान्य कालमें फलता ॥२५५॥

छद्मस्थ व्यवस्थापितमें व्रत नियमाध्ययन ध्यान दान कुशल ।
अपुनर्भव नहिं पाता, सुरादि भव सात सुख पाता ॥२५६॥

अविदिदपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु पुरिसेसु ।
जुट्ठं कदं व दत्तं फलदि कुदेवेसु मणुजेसु ॥२५७॥

जदि ते विसयकसाया पावत्ति परूविदा व सत्थेसु ।
कह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति ॥२५८॥

उपरदपायो पुरिसो समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु ।
गुणसमिदिदोवसेवी हवदि स भागी सुमग्गस्स ॥२५९॥

असुभोवयोगरहिदा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा ।
णित्थारयंति लोगं तेसु पसत्थं लहदि भत्तो ॥२६०॥

दिट्ठा पगदं वत्थुं अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं ।
वट्टदु तदो गुणादो विसेसिदव्वोत्ति उवदेसो ॥२६१॥

अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं ।
अंजलिकरणं पणमं भणिदं इह गुणाधिगाणं हि ॥२६२॥

अब्भुट्ठेया समणा सुत्तत्थविसारदा उवासेया ।
संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि समणेहिं ॥२६३॥

ण हवदि समणोत्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि ।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे ॥२६४॥

अववददि सासणत्थं समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि ।
किरियासु णाणुमण्णदि हवदि हि सो णट्ठचारित्तो ॥२६५॥

गुणदोविगस्स विणयं पडिच्छगो जोवि होमि समणोत्ति ।
होज्जं गुणधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी ॥२६६॥

अविदित परमार्थोंमें, विषय कषाय व्याकुलित पुरुषों में ।
कृतदान प्रीति सेवा, कुदेव मनुजीय फल देती ॥२५७॥
जब वे विषय-कषायें, पापमयी शास्त्रमें कही गई हैं ।
फिर उनके अनुरागी, किमु हों संसार निस्तारक ॥२५८॥
पाप विरत सब धर्मोंमें, समभावी सुगुणगणाश्रित जो ।
वह स्वयं तथा अन्यों, के सुमार्ग का पात्र होता ॥२५९॥
अशुभोपयोग विरहित, शुद्धोपयुक्त शुभोपयोगी या ।
है जगके निस्तारक, शुभ रागी पुण्यके भाजन ॥२६०॥
प्रकृत तत्त्वको लख करि, उत्थान प्रधान क्रिया विनयोंसे ।
गुणके अतिशय ख्यापन रूप, प्रवर्तो जिनाज्ञा यह ॥२६१॥
श्रमण गुणाधिक श्रमणों, के प्रति उत्थान ग्रहण व उपासन ।
पोषण अञ्जलि प्रणमन, सत्कार व विनयवृत्ति कर ॥२६२॥
विदित सूत्रार्थ संयत, ज्ञानी तपयुक्त उपासना योग्य ।
श्रमण भासोंकी नहिं, उपासना श्रमण योग्य कही ॥२६३॥
संयम तप श्रुत संयुत, भी वह श्रमण नहीं हो सकता ।
आत्म प्रधान वस्तुमें, जो नहिं श्रद्धान करता है ॥२६४॥
मार्गस्थ श्रमणको लखि, जो अपवाद है द्वेषवश करता ।
अनुमोदता न चर्या, वह मुनि है नष्ट चारित्री ॥२६५॥
'मैं भि श्रमण' मदसे जो, गुणी श्रमणका विनय नहीं करता ।
वह मदवशी अधम गुण, अनन्त संसारमें रुलता ॥२६६॥

अधिकगुणा सामण्णे वट्टंति गुणाधरेहिं किरियासु ।
जदि ते मिच्छुवजुत्ता हवंति पब्भट्ठचारित्ता ॥२६७॥
णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसायो तवोधिगो चावि ।
लोगिगजणसंसग्गं ण जहदि जदि संजदो ण हवदि ॥२६८॥
णिग्गथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहिं कम्मेहिं ।
सो लोगिगोत्ति भणिदो संजमतवसंपजुत्तोवि ॥२६९॥
तम्हा समं गुणादो समणो समणं गुणेहिं वा अहियं ।
अधिवसदु तम्हि णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं ॥२७०॥
जे अजधागहिदत्था एदे तच्चत्ति णिच्छिदा समये ।
अच्चंतफलसमिद्धं भमंति तेतो परं कालं ॥२७१॥
अजधाचारविजुत्तो जधत्थपदणिच्छिदो पसंतप्पा ।
अफले चिरं ण जीवदि इह सो संपुण्णसामण्णो ॥२७२॥
सम्मं विदिदपदत्था चत्ता उवहिं वहित्थमज्झत्थं ।
विसयेसु णावसत्ता जे ते सुद्धत्ति णिद्दिट्ठा ॥२७३॥
सुद्धस्स य सामण्णं भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं ।
सुद्धस्स य णिव्वाणं सोच्चिय सिद्धो णमो तस्स ॥२७४॥
बुज्झदि सासणमेयं सागारणगारचरियया जुत्तो ।
जो सो पवयणसारं लहुणा कालेण पप्पोदि ॥२७५॥

इति प्रवचनसारप्रकाश चारित्राधिकार. सम्पूर्णम्

—:० ❀ ०:—

अधिक गुणी अधमगुणी के साथ क्रियामें प्रवर्तता है यदि।
तो मिथ्योपयुक्त हो, चारित से भ्रष्ट हो जाते ॥२६७॥
सूत्रार्थपद विदित हों, उप-शान्त कषाय भि तथा तपोधिक भी।
यदि लौकिक संग नहीं, तजता वह संयमी नहीं है ॥२६८॥
निर्ग्रन्थ प्रवज्यायुत, संयम तप संप्रयुक्त भी होकर।
यदि ऐहिक कर्मों में, लगता तो है वही लौकिक ॥२६९॥
सो गुणसम व गुणाधिक, श्रमणों के निकट बसो संग करो।
यदि असार सांसारिक, दुःखों से मुक्ति चाहो तो ॥२७०॥
जो अन्यथा हि जाने जिनमतमें वस्तु तत्त्व यों निश्चित।
वे अनन्त विधि फलयुत, चिरकाल यहं भ्रमण करेंगे ॥२७१॥
अयथाचारा वियुक्त निश्चित सत्यार्थ-पद वा प्रशान्तात्मा।
पूर्व-श्रामण्य संयुत, अकर्मफल मुक्त हो जाता ॥२७२॥
सम्यक् पदार्थवेत्ता अन्तर बहिरंग उपधिको तज करि।
अनासक्त विषयोंमें, जो है वे शुद्ध कहलाते ॥२७३॥
श्रामण्य शुद्धके ही, दर्शन ज्ञान भी शुद्धके होते।
निर्वाण शुद्ध का है, सो मैं उस सिद्धको प्रणमूं ॥२७४॥
जाने इस शासन को, साकारानाकारचरितयुत जो।
वह अल्प-कालमें ही प्रवचन के सारको पाता ॥२७५॥

सोरठा—प्रवचनसार सु-शास्त्र, कुन्दकुन्द ऋषिराज कृत।
है अनुवादितमात्र, गुरुवाणी की भक्ति से ॥

प्रवचनसारप्रकाश, चारित्राधिकार सम्पूर्ण

—:o * o.—

नियमसारप्रकाश
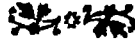
अथ जीवाधिकारः

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसण सहावं ।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं ॥१॥
मग्गो मग्गफलंति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं ।
मग्गो मोक्ख उवायो तस्स फलं होइ णिव्वाणं ॥२॥
णियमेण य जं कज्जं तण्णियमं णाणदंसणचरित्तं ।
विवरीयपरिहरत्थं भणिदं खलु सारमिदि वयणं ॥३॥
णियमं मोक्ख उवाओ तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं ।
एदेसिं तिण्हं पि य पत्तेयपरुवणा होई ॥४॥
अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं ।
ववगयअसेसदोसो सयलगुणप्पा हवे अत्तो ॥५॥
छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू ।
स्वेदं खेदं मदो रइ विण्हियणिद्दा जणुव्वेगो ॥६॥
णिस्सेसदोसरहिओ केवलणाणाइपरमविभवजुदो ।
सो परमप्पा उच्चइ तव्विवरीओ ण परमप्पा ॥७॥
तस्स मुहग्गदवयणं पुव्वापरदोसविरहियं सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥८॥

नियमसारप्रकाश

जीवाधिकारः

नियमनियत निश्चयनियत सुनियमसारप्रकाश ।
निजस्वरूप अनुभूतिमय ध्रुव व्यपगतभवपाश ॥

उत्तम अनन्त दर्शन, ज्ञानस्वभावी जिनेश वीर प्रणमि ।
सुनियमसार कहूंगा, केवलिश्रुतकेवलीभाषित ॥१॥
मार्ग मार्गफल दोनों जिन शासनमें प्रसिद्ध वर्णित हैं ।
मोक्षोपाय मार्ग है, होता निर्वाण उसका फल ॥२॥
जो कर्तव्य नियमसे, वह नियम है ज्ञान दर्शन चारित ।
विपरीत परिहरण को सार ऐसा वचन कहा है ॥३॥
मोक्ष उपाय नियम है, उसका हि फल परम निर्वाण कहा ।
इन तीनों रत्नों की, प्रत्येक प्ररूपणा होती ॥४॥
आप्तागमतत्त्वों के, प्रत्ययसे हि सम्यक्त्व होता है ।
सकल दोष गणवर्जित, आप्त होना सकलगुणात्मा ॥५॥
क्षुत् तृषा रोष रति मद, चिन्तामय मोह मरण रोग जरा ।
खेद स्वेद विस्मय निद्रा जन्म उद्वेग न जिनके ॥६॥
सकल दोषगण वर्जित केवल ज्ञानादि परम विभव सहित ।
परमात्मा होता इससे विपरीत नहिं परमात्मा ॥७॥
उनका मुखोद्गत वचन, पूर्वापर दोषरहित शुद्ध कहा ।
वह वाणी आगम है अतः कथित सुतत्त्वार्थ हुआ ॥८॥

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं ।
तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुण पज्जयेहिं संजुत्ता ॥९॥

जीवो उवओगमओ उवओगो णाण दंसणो होई ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विहावणाणं च ॥१०॥

केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणंति ।
सण्णाणं दुवियप्पं विहाव णाणं हवे दुविहं ॥११॥

सण्णाणं चउभेदं मदिसुद ओही तहेव मणपज्जं ।
अण्णाणं तिवियप्पं मदिआदी भेददो चेव ॥१२॥

तह दंसण उवओगो ससहावेदरवियप्पदो दुविहो ।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणियं ॥१३॥

चक्खु अचक्खु ओही तिण्णिवि भणियं विभावदंसंति ।
पज्जाओ दुवियप्पो सपरावेक्खो य णिरवेक्खो ॥१४॥

णरणारयतिरियसुरा पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा ।
कम्मोपाधिविवज्जित पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा ॥१५॥

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममही भोगभूमिसंजादा ।
सत्तविहा णेरइया णाण पुढवाइभेयेण ॥१६॥

चउदहभेदा भणिदा तेरिच्छी सुरगणा चउब्भेदा ।
एदेसिं वित्थारं लोयधिभागेसु णादव्वं ॥१७॥

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गलकम्मस होदि ववहारो ।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो ॥१८॥

नाना गुण पर्यायोंसे, संयुक्त नभ जीव वा पुद्गल ।
धर्म अधर्म काल ये, छहों पदार्थ तत्त्वार्थ कहे ॥६॥
जीव उपयोगमय है, होता उपयोग ज्ञान दर्शनमय ।
ज्ञानोपयोग दो हैं, स्वभाव विभाव ज्ञान तथा ॥१०॥
केवल इन्द्रियविरहित, असहाय ज्ञान स्वभाव ज्ञान कहा ।
विभाव ज्ञान भि दो विध, भाष्या सम्यक् तथा मिथ्या ॥११॥
सम्यक् ज्ञान चतुर्विध, मति श्रुत अवधि तथा मनःपर्यय ।
मिथ्याज्ञान त्रिविध कुमती कुश्रुत तथा कुअवधि है ॥१२॥
दर्शनोपयोग तथा स्वभाव अरु अस्वभाव दोनों हैं ।
केवल इन्द्रिय विरहित, असहाय दर्शन हि स्वभाव दर्शन ॥१३॥
चक्षु अचक्षु अवधि ये, तीनों दृष्टी विभाव दृष्टी है ।
पर्याय द्विविध स्वपरापेक्षी होती व निरपेक्षी ॥१४॥
नर नारक तिर्यक् सुर, ये पर्यायें विभाव बतलाई ।
कर्मोपाधि विवर्जित पर्यायें ये स्वभाव कहीं ॥१५॥
दो प्रकार के मानुष कर्मभूमिज है, भोगभूमिज भी ।
घम्मादिक पृथ्वी के, भेदसे नारकी हैं सात कहे ॥१६॥
तिर्यञ्च चतुर्दशविध, सुरगण भी चार भेद वाले हैं ।
इनका विस्तृत वर्णन सब लोक विभागमें जानो ॥१७॥
कर्ता भोक्ता आत्मा पुद्गल कर्मका व्यवहार से है ।

दव्वत्थियेण जीवा विदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया ।
पज्जयणयेण जीवा संजुत्ता होंति दुविहेहिं ॥१६॥

इति जीवाधिकारः सम्पूर्णम्

—ः०ः—

अथ अजीवाधिकारः

अणुखंध वियप्पेण दु पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं ।
खधा दु छप्पयारा परमाणू चेव दुवियप्पो ॥२०॥
अइथूल थूलथूलं थूलं सुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं अइसुहुमं इदि धरादियं होइ छब्भेयं ॥२१॥
भूपव्वदमादीया भणिदा अइथूलं थूलमिदि खंधा ।
थूला इदि विण्णेया सप्पीजलतेल्ल माईया ॥२२॥
छायातपआदीआ थूलेदरखंधमिदि वियाणीहि ।
सुहुमथूलेदि भणिया खंध चउ अक्खविसया य ॥२३॥
सुहुमा हवंति खंधा पाओग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो ।
तव्विवरीया खंधा अइसुहुमा इन्दियरूवेहिं ॥२४॥
धाउचउक्कस्स पुणो जं हेऊ कारणंति तं णेयं ।
खंधाणं अवसाणं णादव्वो कज्ज परमाणू ॥२५॥
अत्तादि अत्तमज्झं अत्तंतं णेव इन्दिये गेज्झं ।
अविभागी जं दव्वं परमाणू तं वियाणाहि ॥२६॥
एयरसरूवगंधं दो फासं तं हवे सहावगुणं ।
विहावगुणेमिदि भणियं जिणसमये सव्वपयऽत्तं ॥२७॥

द्रव्यार्थिक से आत्मा, पूर्व कथित पर्यायसे है पृथक् ।
पर्यय-नय से आत्मा, संयुक्त यह कथन दोनों का ॥१६॥

जीवाधिकार. सम्पूर्ण

—:०:—

अजीवाधिकार:

स्कन्ध तथा परमाणु, पुद्गल है दो प्रकार का होता ।
स्कन्ध छह भेद वाला, परमाणु दो प्रकार का है ॥२०॥
वादर-वादर वादर, वादर-सूक्ष्म वा सूक्ष्म-वादर भी ।
सूक्ष्म अति सूक्ष्म ये छह धरादिमें भेद होते हैं ॥२१॥
पृथ्वी पर्वत आदिक वादर-वादर प्रभेद वाला है ।
घृत तैल सलिल आदिक वादर नामक प्रभेद कहा ॥२२॥
छाया आतप आदिक, वादर सूक्ष्म नामका स्कंध कहा ।
स्कन्ध है सूक्ष्म वादर, विषयभूत चार इन्द्रिय के ॥२३॥
स्कन्ध वे सूक्ष्म होते, जो प्रयोग्य हैं कर्म वर्गणा के ।
स्कन्ध अति सूक्ष्म वे जो, न प्रयोग्य कर्म वर्गणा के ॥२४॥
कारण परमाणु कहा, जो कारण चार धातुओंका है ।
कार्यपरमाणु वह जो, स्कंधों से विघी हि शुद्ध हुआ ॥२५॥
मध्यान्तादि स्वयं जो, होता है इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं ।
जो निरंश अविभागी, उसको परमाणु सत् जानो ॥२६॥
एक रस रूपगंधी द्विस्पर्शी, है स्वभाव गुण वाला ।
विभाव गुण वाला भी, सब इन्द्रिय ग्राह्य बतलाया ॥२७॥

अण्णणिरापेक्खेज्जो परिणामो सो सहावपज्जाओ ।
खंधरूवेण पुणो परिणामो सो विहावपज्जाओ ॥२८॥
पोग्गलदव्वं उच्चइ परमाणू णिच्छयेण इदरेण ।
पोग्गलदव्वोत्ति पुणो ववदेसो होदि खंधस्स ॥२९॥
गमणणिमित्तं धम्मं अधम्मं ठिदि जीवपोग्गलाणं च ।
अवगहणं आयासं जीवादी सव्वदव्वाणं ॥३०॥
समयावलिभेदेण दु दुवियप्पं अहव होदि तिवियप्पं ।
तीदो संखेज्जावलि हदसंठाणप्पमाणं तु ॥३१॥
जीवादि पुग्गलादो णंतगुणा चावि संपदा समया ।
लो यायासे संति परमट्ठो सो हवे कालो ॥३२॥
जीवादि दव्वाणं परिवट्टणकारणं हवे कालो ।
धम्मादि चउण्हाणं सहावगुणपज्जया होंति ॥३३॥
एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थि कायात्ति ।
णिद्दिट्ठा जिणसमये काया दु बहुप्पदेसत्तं ॥३४॥
संखेज्जा-संखेज्जा णंत पदेसा हवंति मुत्तस्स ।
धम्मा-धम्मस्स पुणो जीवस्स असंख देसा दु ॥३५॥
लोयायासे ताव दु इदरस्स अणंतयं हवे देहो ।
कालस्स ण कायत्तं एयपदेसो हवे जम्हा ॥३६॥
पोग्गलदव्वं मुत्तं मुत्तिविरहिया हवंति सेसात्ति ।
चेदणभावो जीओ चेदणगुणवज्जिया सेसा ॥३७॥

इति अजीवाधिकारः सम्पूर्णम्

—.*.—

अन्य निरपेक्ष परिणति को हि स्वभाव पर्याय कहते हैं ।
स्कन्ध रूप परिणति को विभाव पर्याय कहते हैं ॥२८॥
निश्चयसे परमाणु, है पुद्गल द्रव्य कहा आगम में ।
व्यवहार से कहा है स्कन्धों का नाम पुद्गल भी ॥२६॥
धर्म निमित्त गमनका अधर्म थितिका जीव पुद्गलों के ।
नभ है अवगाहन का जीवादिक सर्व द्रव्यों के ॥३०॥
काल के भेद दो या, तीन या समय आवली आदिक ।
संख्यातावली गुणित-संस्थान प्रमाणभूत भूतसमय ॥३१॥
जीव वा पुद्गलोंसे अनन्त गुणाहि समय पर्यायें ।
लोक प्रदेशों में है, असंख्य परमार्थ काल कहे ॥३२॥
जीवादिक द्रव्यों का परिवर्तन हेतु काल होता है ।
धर्मादि चार द्रव्यों, के स्वभाव गुण परिणमन हैं ॥३३॥
काल को छोड़ करके, शेष सभी द्रव्य अस्तिकाय कहे ।
बहु प्रदेश वाले को जिनमत में अस्तिकाय कहा ॥३४॥
संख्यात व असंख्यात, अनन्त भि प्रदेश मूर्तके होते ।
धर्म अधर्म जीवके, प्रदेश होते असंख्याते ॥३५॥
लोकाकाश के तथा, व अलोक के प्रदेश अनन्ते हैं ।
काल के कायता नहिं, क्योंकि वह एकप्रदेशी है ॥३६॥
पुद्गल द्रव्य मूर्त है, मूर्ति रहित शेष सर्व द्रव्यों हैं ।
चैतन्यमयी आत्मा, शेष चैतन्य गुण से रहित ॥३७॥

अजीवाधिकार सम्पूर्ण

—:०✿०:—

जारिसया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति ।
जरमरणजम्ममुक्का अट्ठगुणालंकिया तेन ॥४७॥

असरीरा अविणासा अणादिया णिम्मला विसुद्धप्पा ।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी होंदि ॥४८॥

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्च भणिदा हु ।
सव्वे सिद्धसहावा, सुद्धणया संसिदी जीवा ॥४६॥

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ॥५०॥

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियं सद्दहणमेव सम्मत्तं ।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥५१॥

चलमलिनमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ।
अधिगमभावेणाणं हेयोपादेयतच्चाणं ॥५२॥

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा ।
अन्तरहेऊ भणिदा, दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥५३॥

सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स, होदि, सुण, चरणं ।
ववहारणिच्छये, दु तम्हा चरणं पवक्खामि ॥५४॥

ववहारणयचरित्ते ववहारणयस्स होदि सुण चरणं ।
णिच्छयणयचारित्ते तवयरणं होदि णिच्छयदो ॥५५॥

इति शुद्धभावाधिकारः सम्पूर्णम

—:o * o:—

जैसे है सिद्धात्मा, भववासी आत्मा भी वैसे है।
क्योंकि मरण जन्म जरा, रहित अष्ट गुण अलंकृत है ॥४७॥
अशरीरी अविनाशी, निर्मल व अतीन्द्रिय विशुद्धात्मा।
सिद्ध लोकाग्रमें ज्यों, त्यों जानो जीव भवमें भी ॥४८॥
ये सकल भाव भाषे, करिके व्यवहार नयों का आश्रय।
किन्तु शुद्ध नयसे सब, सिद्ध स्वभाव आत्मा जगमें ॥४९॥
पूर्वोक्त भाव सब वे, पर-द्रव्य परभाव हैं हेय अतः।
स्व-द्रव्य हैं उपादेय, जो अन्तस्तत्त्व आत्मा है ॥५०॥
विपरीताशयवर्जित, तत्त्व श्रद्धानको सम्यक्त्व कहा।
संशय विमोह विभ्रम वर्जित संज्ञान होता है ॥५१॥
चलमल अगाढ वर्जित, तत्त्वश्रद्धान को सम्यक्त्व कहा।
हेय आदेय तत्त्वों का, अधिगमन ज्ञान कहा ॥५२॥
जिनसूत्र सूत्रज्ञायक पुरुष सम्यक्त्व के निमित्त होते।
अन्तर्निमित्त होते, दर्शन मोहके क्षय आदिक ॥५३॥
मोक्षके अर्थ सम्यक् दर्शनज्ञान चारित्र होते हैं।
व्यवहार व निश्चय से, अब सब चारित्र कहता हू ॥५४॥
व्यवहार नय चारित में, व्यवहार नय हि का तपश्चरण है।
निश्चय नय चारित में, है निश्चय से तपश्चर्या ॥५५॥

शुद्धभावाधिकार सम्पूर्ण

—:० * ०:—

अथ व्यवहारचारित्राधिकारः

कुलजोणिजीवमग्गणठाणाइसु जाणऊण जीवाणं ।
तस्सारंभणियत्तण परिणामो होइ पढमवदं ॥५६॥

णाणेव दोसेण व मोहेण व मोसभास परिणामं ।
जो पजहइ साहुसया विदिय वय होइ तस्सेवि ॥५७॥

गामे वा णयरे वा णणे वा पेच्छिऊण परमत्थं ।
जो मुयदि गहणभावं तदियवदं होइ तस्सेव ॥५८॥

दट्ठूण इच्छिरूवं वांछाभावं णिवत्तदे तासु ।
मेहुणसण्णविवज्जिय परिणामो अहव तुरियवदं ॥५९॥

सव्वेसिं गंथाणं चागो णिक्खंखभावणापुव्वं ।
पंचमवदमिदि भणियं चारित्तभरं वहंतस्स ॥६०॥

पासुगमग्गेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि ।
गच्छइ परदोसमणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥

पेसुण्णहासंकक्कस परिणिंदप्पप्पसंसयं वयणं ।
परचिंतासपरहिदं भासासमिदी वदं तस्स ॥६२॥

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसुच्छ च ।
दिण्हं परेण भत्तं समभुत्ती एसणासमिदी ॥६३॥

पोथइकमंडलाइं गहणविसग्गेसु पयत्त परिणामो ।
आदावणणिक्खेवण समिदी होदित्ति णिद्दिट्ठा ॥६४॥

व्यवहारचारित्राधिकार:

कुल जीव योनि मार्गण के, स्थानोंमें सुजानि जीवोंको ।
उनकी बाधा परिहृति का, भाव हि अहिंसाव्रत है ॥५६॥

राग विरोध मोहसे, असत्य कथनके परिणामको जो ।
साधु त्याग देता है, उसके है सत्यव्रत होता ॥५७॥

ग्राम नगर वा वनमें, परकीय पदार्थ देखकर जो ।
ग्रहण भाव तज देता, उसके अस्तेय व्रत होता ॥५८॥

स्त्री रूप देख करके, उनमें इच्छानिवृत कर देता ।
मैथुन संज्ञा वर्णित, परिणाम ब्रह्मचर्य व्रत है ॥५९॥

निरपेक्ष भावना से, समस्त परिग्रह त्यक्त कर देता ।
अपरिग्रह व्रत होता, सम्यक् चारित्रधारी के ॥६०॥

प्रासुक पथसे दिनमें, निरखता हुआ चार हाथ आगे ।
सद्भाव सहित जाता, उसके ईर्या समिति होती ॥६१॥

पै शून्य हास्य कर्कश, परनिन्दा आत्म थुतिके वचनको ।
त्यागि स्वपरहित बोले, उसके भाषा समिति होती ॥६२॥

कृत कारित अनुमोदन से, रहित प्रशस्त तथा प्रासुक ही ।
परदत्त शुद्ध भोजन जीमन है ऐषणा समिति ॥६३॥

पुस्तक कमंडलादिक, लेने रखनेमें यत्नका भाव ।
ग्रहण निक्षेप समिति, होती ऐसा मुनीश कहें ॥६४॥

पासुगभूमपदेसे गूढे रहिये परोपरोहेण ।
उच्चारादिच्चागो पइछा समिदी हवे तस्स ॥६५॥

कालुस्समोहसण्णा रागदोसाइ असुहभावाणं ।
परिहारो मणुगुत्ती ववहारणयेण परिकहियं ॥६६॥

थीराजचोरभत्तकहादीवयणस्सया व हेउस्स ।
परिहारो वचगुत्ती अलियादिणियत्तिवयणं वा ॥६७॥

बंधणछेदणमारण आकुंचण तह पसारणादीया ।
कायकिरियाणियत्ती णिद्दिट्ठा कायगुत्तित्ति ॥६८॥

जो रायादि णियत्ति मणस्स जाणीहि तम्मणोगुत्तिं ।
अलियादिणियत्तिं वा मोणं वा होदि वयगुत्ती ॥६९॥

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती ।
हिंसाइणियत्ती वा सरीरगुत्तित्ति णिद्दिट्ठा ॥७०॥

घणघाइकम्मरहिया केवलणाणं य परमगुणसहिया ।
चौतिसअतिशयजुत्ता अरिहंता एरिसा होंति ॥७१॥

णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा सिद्धा जे एरिसा होंति ॥७२॥

पंचाचारसमग्गा पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा ।
धीरा गुणगंभीरा आयरिया ऐरिसा होंति ॥७३॥

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा ।
णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति ॥७४॥

मूढ़ पररोधविरहित, प्रासुक भू के प्रदेश पर लखकर ।
मल मूत्र त्याग करना, प्रतिष्ठान समिति होती है ॥६५॥
कालुष्य मोह संज्ञा, राग विरोधादि अशुभ भावोंका ।
परिहार मनोगुप्ती, कही गई व्यवहार नय से ॥६६॥
स्त्री राज चोर भोजन, कथादि पाप हेतुके कहने का ।
परिहार व अलीकादि, वचन निवृत्ति है वचन गुप्ति ॥६७॥
बंधन छेदन मारण, संकोच प्रसार आदि चेष्टाका ।
परित्याग कर देना, सो भाषी कायगुप्ती है ॥६८॥
मनसे राग निवृत्ती, को जानो मनो गुप्ति निश्चयसे ।
मिथ्या वचन निवृत्ती, व मौन भी है वचन गुप्ती ॥६९॥
काय क्रिया विनिवृत्ती, कायोत्सर्ग है कायकी गप्ती ।
वा हिंसादि निवृत्ती, भी शरीर गुप्ति होती है ॥७०॥
घनघाति कर्म विरहित, केवल ज्ञानादि परमगुण संयुत ।
चउतीस अतिशय सहित, ऐसे अर्हन्त होते हैं ॥७१॥
नष्टाष्ट कर्म बन्धन, अष्टमहागुणमयी परम पूजित ।
नित्य लोकाग्र सुस्थित, ऐसे वे सिद्ध होते हैं ॥७२॥
पंचाचार ममन्वित, पञ्चेन्द्रिय दंति दर्प विध्वंसक ।
धीर गंभीर गुणमय, ऐसे आचार्य होते हैं ॥७३॥
रत्नत्रय से संयुत, जिन देशित तत्त्वके सदुपदेशक ।
शूर निर्वाञ्छता युत ऐसे हैं आध्याय कहे ॥७४॥

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराहणा सयारत्ता ।
णिग्गंथा णिम्मोहा साहू ते एरिसा होंति ॥७५॥
पुव्वुत्तभावणाए ववहारणयस्स होइ चारित्तं ।
णिच्छयणयचारित्तं अह अग्गे पवोच्छामि ॥७६॥

इति व्यवहारचारित्राधिकारः सम्पूर्णम्

—०*०—

अथ परमार्थप्रतिक्रमणाधिकारः

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ ।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७७॥
णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण ।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७८॥
णाहं बालो वुड्ढो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥७९॥
णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो णं कारणं तेसिं ।
कत्ता णं हि कारयिदा अणुमंतो णेव कत्तीणं ॥८०॥
णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहोहं ।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं ॥८१॥
एरिसभेदब्भासे मज्झत्थो होइ तेण चारित्तं ।
तं दिढकरणणिमित्तं पडिकमणादी पवक्खामि ॥८२॥
मोत्तूण वयणरयणं रागादीभाववारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु होदित्ति पडिकमणं ॥८३॥

सर्वारंगविमुक्त व चतुर्विधाराधना सुरक्त सदा ।
निर्ग्रन्थ विगत-मोही, ऐसे ही साधु होते हैं ॥७५॥
पूर्वोक्त भावना में होता चारित्र व्यवहार नयका ।
निश्चयनय का चारित, अब आगे कहा जावेगा ॥७६॥

व्यवहारचारित्राधिकार सम्पूर्ण

—•○ * ○•—

परमार्थप्रतिक्रमणाधिकारः

मैं नारकभाव नहीं, तिर्यञ्च मनुष्य देव भी नहीं हू ।
कर्ता न, न कारयिता, कर्ता का हूं न अनुमोदक ॥७७॥
हूं मार्गणास्थान नहीं, न गुणस्थान व जीवस्थान नहीं ।
कर्ता न, न कारयिता, कर्ताका हू न अनुमोदक ॥७८॥
वाल नहीं वृद्ध नहीं, तरुण नहीं, नहीं उनका कारण भी ।
कर्ता न, न कारयिता, कर्ता का हूँ न अनुमोदक ॥७९॥
राग नहीं द्वेष नहीं, मोह नहीं उनका कारण नहिं ।
कर्ता न न कारयिता, कर्ता का हू न अनुमोदक ॥८०॥
क्रोध नहीं मान नहीं, माया नहिं हू न लोभ भी मैं हू ।
कर्ता न, न कारयिता, कर्ता का हू न अनुमोदक ॥८१॥
यों भेदाभ्यास हुए, हो माध्यस्थ्य उससे हो चारित्र ।
उसको दृढ़ करण निमित्त, प्रतिक्रमणादिक को कहूगा ॥८२॥
छोड़कर वचन रचना, करके रागादि भावका वारण ।
आत्मा को ध्याता जो प्रतिक्रमण सत्य है उसके ॥८३॥

आराहणाइ वट्टइ मोत्तूण विराहणं विसेसेण ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिक्कमणमओ हवे जम्हा ॥८४॥
मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिक्कमणमओ हवे जम्हा ॥८५॥
उम्मग्गं परिचत्ता जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिक्कमणमओ हवे जम्हा ॥८६॥
मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिक्कमणमओ हवे जम्हा ॥८७॥
चत्ता ह्यगुत्तिभावं तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू ।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिक्कमणमओ हवे जम्हा ॥८८॥
मोत्तूण अट्टरुद्दं झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा ।
सो पडिकमणं पुच्चइ जिणवरणिद्दिट्ठसुत्तेसु ॥८९॥
मिच्छत्तपहुदिभावा पुव्वंजीवेण भाविया दु सुइरं ।
सम्मत्तपहुदिभावा अभाविया होंति जीवेण ॥९०॥
मिच्छादंसणणाण चरित्तं चइऊण णिरवसेसं ।
सम्मत्तणाणचरणं जो भावइ सो पडिक्कमणं ॥९१॥
उत्तम अट्ठं आदा तम्हि ठिदा हनदि मुणिवरा कम्मं ।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं ॥९२॥
झाणंणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं ।
तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमणं ॥९३॥

आराधनमें रहना जो तजकर सब विराधना को मुनि ।
वह प्रतिक्रमण होता, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है ॥८४॥
अनाचार को तजकर आचारमें स्थिरभाव जो करता ।
वह प्रतिक्रमण होता, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है ॥८५॥
छोड़ि उन्मार्ग को जो जिन पथमें स्थैर्य भावको करता ।
वह प्रतिक्रमण होता, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है ॥८६॥
शल्यभाव को तजकर जो, निःशल्य में साधु परिणमता ।
वह प्रतिक्रमण होता, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है ॥८७॥
तजि अगुप्त भावों को, त्रिगुप्ति गुप्त जो साधु होता है ।
वह प्रतिक्रमण होता, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है ॥८८॥
आर्त रौद्र ध्यानों को, तजकर जो धर्म शुक्लको ध्याता ।
जिनवर प्रोद्गत सूत्रों में, वह स्वयं प्रतिक्रमण है ॥८९॥
मिथ्यात्व भाव आदिक, जीवने पूर्व सु चिर समय भाये ।
सम्यक्त्वभाव आदिक, भाये नहिं जीवने कबहू ॥९०॥
पूर्ण रूपसे तजकर दर्शन ज्ञान चारित्र मिथ्याको ।
सम्यक्त्वज्ञान चर्या, को जो भावे प्रतिक्रमण वह ॥९१॥
उत्तमार्थ यह आत्मा, उसमें स्थित साधु कर्मको नाशे ।
इसमें परम ध्यान हि, उत्तमार्थ का प्रतिक्रमण है ॥९२॥
ध्यान विलीन साधु ही, समस्त दोषका त्याग करता है ।
इससे परम ध्यान ही, उत्तमार्थ का प्रतिक्रमण है ॥९३॥

पडिकमणणामधेये सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं ।
तह णादा जो भावइ तस्स तदा होदि पडिकमणं ॥९४॥

इति परमार्थप्रतिक्रमणाधिकारः सम्पूर्णम्

—: * :—

अथ निश्चयप्रत्याख्यानाधिकारः

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स ॥९५॥

केवलणाण सहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ ।
केवलसत्तिसहावो सोहं इदि चिंतए णाणी ॥९६॥

णियभावं ण वि मुंचइ परभावं णेव गेण्हए केई ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सोहं इदि चिंतए णाणी ॥९७॥

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं वज्जिदो अप्पा ।
सोहं इदि चिंतयतो तत्थेव य कुणदि थिरभावं ॥९८॥

ममत्तं परिवज्जामि णिम्मत्तिमुवट्ठिदो ।
आलंवणं च मे आदा अवसेसं च वोस्सरे ॥९९॥

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥१००॥

एगो य मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं ।
एगस्स जादि मरणं एगो सिज्झइ णीरयो ॥१०१॥

एगो मे सासदा अप्पा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा मे वाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥१०२॥

प्रतिक्रमण सूत्रों में जैसा वर्णित प्रतिक्रमण वैसा।
जानकर भावता जो, सो उसके प्रतिक्रमण होता ॥६४॥

परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार सम्पूर्ण

—:o * o:—

निश्चयप्रत्याख्यानाधिकारः

'सकल जल्पको तजकर, भावी शुभ अशुभ मान वारण कर।
आत्मा को जो ध्याता, होता प्रत्याख्यान उसके ॥६५॥
केवल ज्ञान स्वभावी, केवल दर्शन स्वभाव सौख्यमयी।
केवल शक्ति स्वभावी, 'सो मैं' यह चिन्तता ज्ञानी ॥६६॥
निज भावको न तजता, किसी भि परभावको न गहता वह।
जाने देखे सबको, 'सो मैं' यह चिन्तता ज्ञानी ॥६७॥
प्रकृतिस्थित अनुभाग प्रदेशबंधो से रहित जो आत्मा।
'सो मैं' यह चिन्तन कर, उसमें थिर भावको करता ॥६८॥
ममता को छोड़ता हूं निर्ममत्व विलीन हो।
मेरा आत्मा आलंबन शेष को हू छोड़ता ॥६९॥
मेरे ज्ञानमें हि मैं, दर्शन चारित्रमें हि मैं आत्मा।
प्रत्याख्यान व संवर में, मेरे भोगमें आत्मा ॥१००॥
जीव इकला मरता इकला जीवता स्वयं।
स्वयं इकला मरता इकला सिद्ध हो स्वयं ॥१०१॥
इक मेरा शाश्वत आत्मा ज्ञान दर्शन भावयुत।
शेष सब भाव संयोगी मुझसे बाह्य सर्वथा ॥

जं किंचि मे दु चरितं सव्वं तिविहेण वोस्सरे ।
सामाइयं तु तिविहं करेवि सव्वं णिरायारं ॥१०३॥
सम्मं मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि ।
आसाए वोसरित्ताणं समाहि पडिवज्जए ॥१०४॥
णिक्कसायस्स दंतस्स सूरस्स ववसायिणो ।
संसारभयभीदस्स पच्चक्खाणं सुहं हवे ॥१०५॥
एवं भेदब्भासे जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं ।
पच्चक्खाणं सक्कदि धरिदो सो मंजदो णियमा ॥१०६॥

इति निश्चयप्रत्याख्यानाधिकारः सम्पूर्णम्

—०*०—

अथ परमआलोचनाधिकारः

णोकम्म कम्मरहियं विहाव गुणपज्जयेहिं वदिरित्तं ।
अप्पाणं जो झायदि, समणस्सालोयनं होदि ॥१०७॥
आलोयनमालुंछण वियडीकरणं च भावसुद्धीए ।
चउविहमिह परिकहियं आलोयणलक्खणं समये ॥१०८॥
जो पस्सदि अप्पाणं समभावे संठिवित्तु परिणामं ।
आलोयणमिदि जाणह परमजिणिंदस्स उवएसं ॥१०९॥
कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीयपरिणामो ।
साहीणो समभावो आलुंछणमिदि समुद्दिट्टं ॥११०॥
कम्मादो अप्पाणं भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं ।
मज्झत्थभावणाए वियडीकरणंति विण्णेयं ॥१११॥

मदमाणमायलोहवि विज्जयभावो दु भावसिद्धत्ति ।
परिकहियं भावाणं लोयालोयप्पदरिसीहिं ॥११२॥

इति परमआलोचनाधिकार सम्पूर्णम्

—०*०—

अथ शुद्धनयप्रायश्चित्ताधिकारः

वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावा ।
सो हवदि पायछित्तं अणवरयं चेव कायव्वो ॥११३॥
कोहादि सगब्भावं खयपहुदीभावणाएणिग्गहणं ।
पायच्छित्तं भणिदं णियगुणचिंताए णिच्छयदो ॥११४॥
कोहं खमया माणं समद्दवेणज्जवेण मायं च ।
संतोसेण य लोहं जयदि खए चउव्विह कसाये ॥११५॥
उक्किट्ठो जो वोहो णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं ।
जो धरइ मुणी णिच्चं पायच्छित्तं हवे तस्स ॥११६॥
किं वहुणा भणियेण य वरतवचरणं महेसिणो सव्वे ।
पायच्छित्तं जाणह अणेयकम्माण खयहेदू ॥११७॥
णंताणंतभवेण समज्जिउ अह कम्मसंदोहो ।
तवचरणेण विणस्सदि पायच्छित्तं तवं तम्हा ॥११८॥
अप्पसरूवालंवण भावेण दु सव्वभावपरिहारं ।
सक्कदि णाणी जीवो तम्हा झाणं हवे सव्वं ॥११९॥
सुह असुह वयणरयणं रायादीभाववारणं किच्चा ।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु णियमं हवे णियमा ॥१२०॥

मदन मदलोभ माया, वर्जित भावको शुद्धि कहा ।
लोकालोक प्रदर्शी जिनवर ने भव्य जीवों को ॥११२॥

परमसमाध्यधिकार सम्पूर्ण

—:o • o—

शुद्धनयप्रायश्चित्ताधिकारः

व्रत समिति शील संयम, परिणाम व अक्षनिग्रह परिणति ।
सो प्रायश्चित्त होता, कर्त्तव्य नियमसे यही हो ॥११३॥
क्रोधादि निज विभावोंके क्षय आदिककी सु-भावनामें ।
रहना व स्वगुण चिन्तन, प्रायश्चित है नि चयसे ॥११४॥
क्रोधको क्षमा से मद को, मार्दवसे छलको आर्जवसे ।
तोष से लोभको यों, श्रमण जीतता कषायों को ॥११५॥
उसही आत्मा के उत्कृष्ट बोध बोध ज्ञानचित्तको जो मुनि ।
नित्य चित्त में धरता उसके प्रायश्चित्त होता ॥११६॥
बहुत बोलनेसे क्या, वर तपश्चरण महर्षियोंका सब ।
नाना कर्मों के क्षय, का हेतु प्रायश्चित्त कहा ॥११७॥
आत्मस्वरूपालंबन, भावसे जीव सकल विभावों का ।
परित्याग कर सकता, इससे सर्वस्व ध्यान हुआ ॥११८॥
अनन्तान्त भवसे अर्जित शुभ अशुभ कर्मकी राशी ।
नशती तपके द्वारा, सो प्रायश्चित्त तप भाष्या ॥११९॥
शुभ अशुभ वचन रचना, व रागादि भावका निवारण करि ।
जो आत्मा को ध्याता, उसके हि नियम नियमसे है ॥१२०॥

कायाई परदव्वे थिरभावं परिहरित्तु अप्पाणं ।
तस्स हवे उस्सग्गं जो झायइ णिव्विअप्पेण ॥१२१॥

इति शुद्धनयप्राश्चित्ताधिकारः सम्पूर्णम्

—:० * ०:—

अथ परमसमाधि अधिकारः

वयणोच्चारणकिरियं परिचित्ता वीयरायभावेण ।
जो झायदि अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥१२२॥
संजमणियमतवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण ।
जो झायइ अप्पाणं परमसमाही हवे तस्स ॥१२३॥
किं काहदि वणवासो कायकिलेसो विचित्त उववासो ।
अज्झयणमौणपहुदी समदारहियस्स समणस्स ॥१२४॥
विरदी सव्वसावज्जे तिगुत्तीपहिदिंद्रिओ ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१२५॥
जो सव्वसमो भूदेसु थावरेसु तसेसु वा ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१२६॥
जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१२७॥
जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेति दु ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१२८॥
जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसो ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१२९॥

कायादिक परद्रव्योंमें, स्थिर भाव छोड़ि आत्मा को ।
निर्विकल्प ध्यावे जो उसके कायोत्सर्ग होता ॥१२१॥

शुद्धनयप्रायश्चित्ताधिकार सम्पूर्ण

—०*०:—

परमसमाधि अधिकार

वचनोच्चारणकिरिया को, तजकर वीतरागभाव हि से ।
जो आत्मा को ध्याता, उसके हि परमसमाधी है ॥१२२॥
संयम-नियम तपस्या, धर्म ध्यान शुक्ल ध्यानके द्वारा ।
जो आत्मा को ध्याता, उसके हि परम समाधि है ॥१२३॥
समता रहित श्रमणके, काय क्लेश वनवास विविध अनशन ।
अध्ययन मौन आदिक, क्या फल ये कुछ भि कर सकते॥१२४॥
सर्व सावद्य में विरत त्रिगुप्त पिहितेन्द्रियी ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्ममें कहा ॥१२५॥
जो सम सर्व भूतों में स्थावर त्रस सर्व में ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्ममें कहा ॥१२६॥
जिसके निकट है आत्मा संयम व तप नियम में ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्ममें कहा ॥१२७॥
जिसके राग व द्वेष विकृति करते नहीं ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्म में कहा ॥१२८॥
आर्त रौद्र ध्यानों को जो नित्य हैं त्यागते ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्म में कहा ॥१२९॥

जो दु पुण्णं च पावं च भावं वज्जेदि णिच्चसा ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१३०॥
जो दु हस्सं रदिं सोगं अरदिं वज्जेइ णिच्चसा ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे ॥१३१॥
।
॥१३२॥
जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएइ णिच्चसा ।
तस्स सामाइगं ठाई इदि केवलिसासणे ॥१३३॥

इति परमसमाधि अधिकार सम्पूर्णम्

—०*०:—

अथ परमभक्ति अधिकारः

सम्मत्तणाणचरणे जो भत्तिं कुणादि सावगो समणो ।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती, होदित्ति जिणेहिं पण्णत्तं ॥१३४॥
मोक्खंगयपुरिसाणं गुणभेदं जाणिऊण तेसिं पि ।
जो कुणादि परमभत्तिं ववहारणयेण परिकहियं ॥१३५॥
मोक्खपहे अप्पाणं ठविऊण य कुणादि णिव्वुदीभत्ती ।
तेण दु जीवो पावइ असहायगुणं णियप्पाणं ॥१३६॥
रायादीपरिहारे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू ।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स कहं हवे जोगो ॥१३७॥
सव्ववि अप्पाभावे अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू ।
सो जोगभत्तिजुत्तो इदरस्स कहं हवे जोगो ॥१३८॥

पुण्य पाप भावों को जो नित्य हैं त्यागते ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्म में कहा ॥१३०॥
हास्य शोक अरति रतिको जो नित्य त्यागते ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्म में कहा ॥१३१॥
जुगुप्सा वेद मय भय को जो नित्य हैं त्यागते ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्म में कहा ॥१३२॥
धर्म व शुक्ल ध्यानों को ध्याते हैं जो नित्य ही ।
उसके स्थिर सामायिक केवलि धर्म में कहा ॥१३३॥

परमसमाधि अधिकार सम्पूर्ण

—.०✿०—

परमभक्ति अधिकार

सम्यक्त्व ज्ञान चारितमें, श्रावक श्रमण भक्ति जो करता ।
उसके निर्वृत्ति भक्ति, होती भाष्या जिनेश्वर ने ॥१३४॥
निर्वृतिगत पुरुषों के गुण भेद सुज्ञान कर उनकी भी ।
परमभक्ति जो करता व्यवहार निर्वाण भक्ति कही ॥१३५॥
शिवपथ में आत्मा को, स्थापि निर्वाण भक्ति कहना है ।
उसमें आत्मा पाता असहाय गुणी निजात्मा को ॥१३६॥
रागादि परिहरण में आत्मा को साधु जो लगाता है ।
सो योग भक्तियुत है, इतरों के योग कैसे हो ॥१३७॥
सब विकल्प मोचनमें आत्मा को साधु जो लगाता है ।
सो योग भक्तियुत है इतरों के योग कैसे हो ॥१३८॥

विवरीयाभिणिवेशं परिचत्ता जोण्ह कहिय तच्चेसु ।
जो जुंजदि अप्पाणं णियभावो सो हवे जोगो ॥१३९॥
उसहादिजिणवरिंदा एवं काऊण जोगवरभत्तिं ।
णिव्वुदिसुहमावण्णा तम्हा धर जोगवरभत्तिं ॥१४०॥

इति परमभक्ति अधिकार सम्पूर्णम्

—.०:※:०:—

अथ निश्चयपरमावश्यकाधिकारः

जो ण हवदि अण्णवसो तस्स दु कम्मं भणंति आवासं ।
कम्मविणासणजोगो णिव्वुदिमग्गोत्ति पिज्जुत्तो ॥१४१॥
ण वसो अवसो अवसस्स कम्ममावस्सयंति बोधव्वा ।
जुत्तित्ति उवायंति य णिरवयवो होदि णिज्जेति ॥१४२॥
वट्टदि जो सामण्णो अण्णवसो होदि असुहभावेण ।
तम्हा तस्स दुकम्मं आवस्सयलक्खणं ण हवे ॥१४३॥
जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो ।
तम्हा तस्स दु कम्म आवस्सयलक्खणं ण हवे ॥१४४॥
दव्वगुणपज्जयाणं चित्तं जो कुणइ सोवि अण्णवसो ।
मोहांधयारववगय समणा कहयंति एरिसयं ॥१४५॥
परिचत्ता परभावं अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं ।
अप्पवसो सो होदि हु तस्स हु कम्मं भणंति आवासं ॥१४६॥
आवासं जइ इच्छसि अप्पसहावेसु कुणहि थिरभावं ।
तेण दु सामण्णगुणं संपुण्णं होदि जीवस्स ॥१४७॥

जो विपरीताशय का कर परिहार जिन कथित तत्त्वोंमें ।
आत्मा को युक्त करे, वह निज का भावयोग कहा ॥१३९॥
वृषभादि जिनवरों ने, ऐसी वर योगभक्ति को करके ।
निर्वृति सुख को पाया, अतः योगभक्ति धारण कर ॥१४०॥

परमभक्ति अधिकार सम्पूर्ण

—:०*०:—

निश्चयपरमावश्यक अधिकार

जो न अन्यवश होता, उसके हैं कर्म कहे आवश्यक ।
जो कर्म विनाशक था, निर्वृतिका मार्ग दर्शाया ॥१४१॥
न वश अवश व अवशका, कर्म आवश्य अथवा आवश्यक ।
अवश अशरीर होने की, युक्ति उपाय निर्युक्ती ॥१४२॥
अशुभ वर्ते, जो वह श्रमण है अन्यवश होता ।
इससे उस साधू के, आवश्यक कर्म नहिं होता ॥१४३॥
जो शुभ भावमें रहे, वह संयत भी है अन्यवश होता ।
इससे उस साधू के, आवश्यक कर्म नहिं होता ॥१४४॥
द्रव्य गुण पर्यायों में, जो जोड़े चित्त वह भि अन्यवशी ।
मोहान्धकार-व्यपगत, श्रमण निरूपण करें ऐसा ॥१४५॥
परभाव त्याग कर जो, ध्याता निर्मल स्वभाव आत्माको ।
वह होता आत्मवशी, उसका है कर्म आवश्यक ॥१४६॥
आवश्यक यदि चाहो, आत्म स्वभावों हि में करो स्थिरता ।
उससे सामायिक गुण, हो जाता है पूर्ण आत्माको ॥१४७॥

आवासएण हीणो पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो ।
पुव्वुत्तकमेण पुणो तम्हा आवासयं कुज्जा ॥१४८॥

आवासएण जुत्तो समणो जो होदि अंतरंगप्पा ।
आवासयपरिहीणो सो समणो होदि बहिरप्पा ॥१४९॥

अंतरबाहिरजप्पे जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा ।
जप्पेसु जो ण वट्टइ सो उच्चइ अंतरंगप्पा ॥१५०॥

जो धम्मसुक्क झाणम्हि परिणदो सोवि अंतरंप्पा ।
झाणविहीणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि ॥१५१॥

पडिकमणपहुदिकिरियं कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं ।
तेण दु विरागचरिए समणो अब्भुट्ठिदो होदि ॥१५२॥

वयणमयं पडिकमणं वयणमयं पच्चक्खणियमं च ।
आलोयणवयणमयं तं सव्वं जाण सज्झाओ ॥१५३॥

जदि सक्कइ कादुं जे पडिकमणादि करेइ झाणमयं ।
सत्तविहीणो जो जइ सद्दहणं चेव कायव्वं ॥१५४॥

जिण कहिय परमसुत्ते पडिकमणादि परिक्खऊण फुडं ।
मोणव्वयेण जोई णिजकज्जं साहए णिच्चं ॥१५५॥

णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी ।
तम्हा वयणविवादं सगपरसमयेहिं वज्जिज्जो ॥१५६॥

लद्धूणं णिहि एक्को तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्ते ।
तह णाणी णाणणिहि भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं ॥१५७॥

आवश्यक हीन श्रमण है, चारित्रसे भ्रष्ट हो जाता ।
अतः पूर्वोक्त विधिसे, अवश्य आवश्य कर्म करो ॥१४८॥

आवश्यकयुत जो मुनि, वे होते शुद्ध अन्तरात्मा हैं ।
आवश्यक हीन श्रमण, जो वह वहिरातमा होता ॥१४६॥

अन्तर्बाह्य जल्पना, में जो वर्ते वह है वहिरात्मा ।
जल्पों में न रहे जो, वह होता अन्तरङ्गात्मा ॥१५०॥

जो धर्म शुक्ल ध्यानोंमें, परिणत वह भि अन्तरात्मा ।
ध्यान विहीन श्रमण को, वहिरात्मा मोहयुत जाना ॥१५१॥

निश्चयसे प्रतिक्रमण, वचनमय नियम प्रत्याख्यान तथा ।
इससे विराग चर्या में, उत्थित श्रमण होता है ॥१५२॥

वचनमयी प्रतिक्रमण, वचनमय नियम प्रत्याख्यान तथा ।
आलोचन वचनमयी, जानो स्वाध्याय वह सब है ॥१५३॥

ध्यानमयी प्रतिक्रमण, आदिक करना सुशक्य होय करो ।
यदि वह शक्ति नहीं तो, तब तक श्रद्धान तो करना ॥१५४॥

जिन कथित परम सूत्रों, में प्रतिक्रमणादिकी परख करके ।
मौन सुव्रत से योगी, निज आत्म सुकार्य सिद्ध करे ॥१५५॥

नाना जीव व नाना, चेष्टा नाना प्रकार की लब्धी ।
इससे स्व-पर-धर्मियों, में वचन विवाद तज देना ॥१५६॥

ज्यौं कोई निधि पाकर, उसका फल अनुभववें स्वयं निजमें ।
त्यौं ज्ञानी परतति तजि, अनुभवे स्वयं ज्ञान निधिको ॥१५७॥

सव्वे हि पुराणपुरिसा एवं आवासयं य काऊण ।
अपमत्तपहुदि ठाणं पडिवज्जय केवली जादा ॥१५८॥

इति निश्चयपरमावश्यकाधिकारः सम्पूर्णम्

—०*०:—

अथ शुद्धोपयोगाधिकारः

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणयेण केवली भयवं ।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं ॥१५९॥
जुगवं वट्टइणाणं केवलणाणिस्स दंसणं च तहा ।
दिणयरपदासतावं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं ॥१६०॥
णाणं परप्पयासं दिट्ठि अप्पप्पयासया चेव ।
अप्पा सपरपयासो होदित्ति हि मण्णसे जदि हि ॥१६१॥
णाणं परप्पयासं तइया णाणेण दंसणं भिण्णं ।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा ॥१६२॥
अप्पा परप्पयासो तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं ।
ण हवदि परदव्वगयं दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा ॥१६३॥
णाणं परप्पयासं ववहारणयेण दंसणं तम्हा ।
अप्पा परप्पयासो ववहारणयेण दंसणं तम्हा ॥१६४॥
णाणं अप्पपयासं णिच्छयणयेण दंसणं तम्हा ।
अप्पा अप्पपयासो णिच्छयणयेण दंसणं तम्हा ॥१६५॥
अप्पसरूवं पेच्छदि लोयालोयं ण केवली भयवं ।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होई ॥१६६॥

सकल पुराण पुरुष यों आवश्यक सुकर्म पालन कर ।
अप्रमत्तादिक गुणों को, पाकर हुए केवलि प्रभु ॥१५८॥

निश्चयपरमावश्यकाधिकार सम्पूर्ण

—:o * o:—

शुद्धोपयोगाधिकारः

सबको जानें देखें, व्यवहारनयसे केवली भगवन् ।
जानें देखें निजको, निश्चयसे केवली भगवन् ॥१५९॥
ज्यों दिन करका वर्ते, प्रकाश वा ताप लोकमें युगपत् ।
केवल ज्ञानी के युग-पत् दर्शन ज्ञान वर्ते त्यों ॥१६०॥
ज्ञान परका प्रकाशक, दर्शन आत्मा ही का प्रकाशक है ।
आत्म स्वपर प्रकाशक, होता यह मान्यता यदि हो ॥१६१॥
ज्ञान परका प्रकाशक, तो दर्शन भिन्न ज्ञानसे होगा ।
पर-द्रव्यगत न दर्शन, सो पहिले ही किया वर्णित ॥१६२॥
आत्मा अन्य प्रकाशक, तो दर्शन भिन्न जीवसे होगा ।
पर-द्रव्यगत न दर्शन, सो पहिले ही किया वर्णित ॥१६३॥
ज्ञान परका प्रकाशक दर्शन भी व्यवहार से कहा है ।
आत्मा अन्य प्रकाशक, दर्शन भी व्यवहार से त्यों ॥१६४॥
ज्ञान आत्मप्रकाशक, दर्शन भी निश्चयनय से कहा है ।
आत्मा आत्मा प्रकाशक, दर्शन भी कहा निश्चय से ॥१६५॥
आत्म-स्वरूप निरखता, नहिं लोकालोक केवली भगवन् ।
यदि कोई कहे ऐसा, उसे क्या दोष आवेगा ॥१६६॥

मुत्तममुत्तं दव्वं चेयणमियरं सगं च सव्वं च ।
पेच्छंतस्स दु णाणं पच्चक्खमणिंदियं होई ॥१६७॥

पुव्वुत्तसयलदव्वं णाणागुणपज्जयेण संजुत्तं ।
जो ण य पेच्छदि सम्मं परोक्खदिट्ठि हवे तस्स ॥१६८॥

लोयालोयं जाणइ अप्पाणं णेव केवली भयवं ।
जइ कोइ भणइ एवं तस्स य किं दूसणं होइ ॥१६९॥

णाणं जीवसरूवं तम्हा जाणेइ अप्पमं अप्पा ।
अप्पाणं णवि जाणदि अप्पादो होदि विदिरित्तं ॥१७०॥

अप्पाणं विणु णाणं णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो ।
तम्हा सपरपयासं णाणं तह दंसणं होदि ॥१७१॥

जाणंतो पस्संतो ईहापुव्वं- ण होइ केवलिणो ।
केवलणाणी तम्हा तेण दु सो बंधगो भणिदो ॥१७२॥

परिणाम पुव्ववयणं जीवस्स य बंधकारणं होई ।
परिणाम रहिय वयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो ॥१७३॥

ईहापुव्वं वयणं जीवस्स य बंधकारणं होई ।
ईहारहियं वयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो ॥१७४॥

ठाणणिसेज्जविहारी ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो ।
तम्हा ण होइ बंधो साक्खं मोहणीयस्स ॥१७५॥

आउस्स खयेण पुणो णीसासो होइ सेस पयडीणं ।
पच्छा पावइ सिग्घं लोयग्गं समयमेत्तेण ॥१७६॥

मूर्त अमूर्त अचेतन, चेतन निज सर्व द्रव्यको जाने ।
उसका ज्ञान अतीन्द्रिय, निर्मल प्रत्यक्ष होता है ॥१६७॥

नाना गुण पर्ययसे संयुत पूर्वोक्त सकल द्रव्यों को ।
जो नहिं देखे सम्यक्, दृष्टि होती परोक्ष उसकी ॥१६८॥

लोक व अलोक जाने, आत्माको नहीं केवली भगवन् ।
यदि कोइ कहे ऐसा उसके क्या दोष आवेगा ॥१६९॥

ज्ञान आत्मस्वरूपी जाने, आत्मा को आतमा इससे ।
आत्मा को नहिं जाने, सो होगा भिन्न आत्मा से ॥१७०॥

जान ज्ञान आत्माको, जान आत्माको ज्ञान निःसंशय ।
इससे स्वपर प्रकाशक होता है ज्ञान वा दर्शन ॥१७१॥

ज्ञाता द्रष्टा केवलि, के ईहापूर्व वृत्ति नहिं होती ।
इससे केवल ज्ञानी, प्रभु कर्मों का अबन्धक है ॥१७२॥

परिणाम पूर्वक वचन, होता जीवके बन्धका कारण ।
परिणाम विरहित वचन होने से कर्मबन्ध नहीं ॥१७३॥

इच्छापूर्वक वाणी, होती जीवके बन्धका कारण ।
इच्छा विरहित वाणी, होने से कर्म बन्ध नहीं ॥१७४॥

आसन विहार विस्थिति, ईहापूर्वक नहीं है केवलिके ।
सो बन्ध नहीं, बन्धन, होता साक्षार्थ मोही के ॥१७५॥

आयुक्षयके क्षणमें विनाश होता शेष प्रकृतियों का ।
फिर शीघ्र प्राप्त करता लोक शिखर समय मात्र हि में ॥१७६॥

जाइजरमरणरहियं　परमं　कम्मट्ठवज्जियं　सुद्धं ।
णाणाइ　चउ　सहावं　अक्खयमविणासमच्छेयं ॥१७७॥

अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं　पुण्णपावणिम्मुक्कं ।
पुणरागमणविरहियं　णिच्चं　अचलं　अणालंवं ॥१७८॥

णवि दुक्खं णवि सुक्खं णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा ।
णवि मरणं णवि जणणं तत्थेवं य होइ णिव्वाणं ॥१७९॥

णवि इन्दिय उवसग्गा णवि मोहो विम्हियो णिद्दा य ।
णय तिण्हा णेव छुदा तत्थेव य होइ णिव्वाणं ॥१८०॥

णवि कम्मं णोकम्मं णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि ।
णवि धम्मसुक्कझाणे तत्थेव य होइ णिव्वाणं ॥१८१॥

विज्जदि केवलणाणं केवल सोक्खं च केवलं विरियं ।
केवलदिट्ठ　अमुत्तं　अत्थित्तं　सप्पदेसत्तं ॥१८२॥

णिव्वाणमेव　सिद्धा　णिव्वाणमिदि　समुद्दिट्ठा ।
कम्मविमुक्को　अप्पा　गच्छइ　लोयग्गपज्जंतं ॥१८३॥

जीवाण पुग्गलाणं गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थं ।
धम्मत्थिकायभावे　तत्तो　परदो　ण　गच्छंति ॥१८४॥

णियमं णियमस्स फलं णिद्दिट्ठं पवयणस्स भत्तीए ।
पुव्वापरयं　विरोधो　अवणीय　पूरयंतु　समयण्हा ॥१८५॥

ईसाभावेण　पुणो　केई　णिंदंति　सुंदरं　मग्गं ।
तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्तिं मा कुणह जिणमग्गे ॥१८६॥

जनम जरा मरण रहित, परमशुद्ध आठ कर्मसे वर्जित ।
ज्ञानादि चतुष्टयमय, अक्षय अच्छेद्य अविनाशी ॥१७७॥
अव्याबाध अतीन्द्रिय, अनुपम वा पुण्य पापसे व्यपगत ।
पुनरागमन रहित ध्रुव, अचल अनालंब सहजात्मा ॥१७८॥
दुःख नहिं सौख्य नहिं, नहिं पीड़ा बाधा न मरण जन्म नहीं ।
कोई विकार नहिं जहं, उसको निर्वाण कहते हैं ॥१७९॥
नहिं इन्द्रिय उपसर्ग न, नहिं विस्मय मोह नहीं नहीं निद्रा ।
तृष्णा न क्षुधा नहिं जहं, उसको निर्वाण कहते हैं ॥१८०॥
कर्म न नोकर्म नहीं, नहिं चिन्ता आर्त रौद्र ध्यान नहीं ।
धर्म शुक्ल भी नहिं जहं, उसको निर्वाण कहते हैं ॥१८१॥
केवल दर्शन केवल, ज्ञान व केवलवीर्य व केवल सुख ।
अस्तित्व प्रदेशित्व व, अमूर्तता सिद्ध स्वाभाविक ॥१८२॥
निर्वाण सिद्ध ही है, सिद्ध निर्वाण ही कहा समय में ।
कर्म निर्मुक्त आत्मा, जाता लोकाग्रपर्यन्त हि ॥१८३॥
जीव व पुद्गलोंकी, गति जानो जहां तलक धर्मास्तिक ।
धर्मास्ति न होनेसे उससे आगे नहीं जाते ॥१८४॥
नियम वा नियमका फल, प्रवचनकी भक्ति निरूपा है ।
पूर्वापर विरोध यदि, हो तो समयज्ञ पूर्ति करो ॥१८५॥
ईर्ष्या भावसे कोइ, सुन्दर इस मार्गको निन्दता हो ।
उसके सुनि वचन कभी, जिनवृष में नहिं अभक्ति करो ॥१८६॥

णियभावणाणिमित्तं मए कयं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं ॥१८७॥

इति शुद्धोपयोगाधिकार सम्पूर्णम्

इति नियमसारप्रकाश समाप्तम्